पुराणसंग्रह-ग्रन्थमाला संख्या ३

पुराणतत्त्वार्थमयं प्रकाशयन्

ओ३म्

पुराण-तत्व-प्रकाश

का

तृतीय-भाग

जिस में

श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग
अग्नि, कूर्म, वाराह, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, वाम-
नादि पुराणों से बुद्धि के विपरीत और
सृष्टिक्रम के विरुद्ध बातें, गणेशो-
त्पत्ति तथा श्राद्धविषय का
वर्णन किया गया है।

चिम्मनलाल वैश्य कासगञ्ज
निवासी ने

निर्मित कर

रामप्रसाद जैनीके प्रबन्ध से ग्लोबप्रिंटिंगवर्क्स
मेरठ में मुद्रित कराया।

द्वितीयावृत्ति ११००] सन् १९१९ [मूल्य ॥)

निवेदन।



इसवार श्री पिताजी की आज्ञा-
नुसार मैंने इसका संशोधन कियाहै
पाठकगण प्रसन्नता पूर्वकपाठकर
आनन्द उठायें।

आपका अनुचर-

भद्रगुप्त वैश्य

ओ३म्

पुराण-तत्व-प्रकाश

तृतीय भाग

एक मास व्यतीत होने पर श्रीमान् पण्डित राम-प्रसाद जी बनारस से लौट अपने गृह पर विश्राम करने के पश्चात् एक दिन कई एक महाशयों के साथ सेठजी के यहां पधारे ।

प्रवेश ।

आर्य्य सेठ—श्रीमान पण्डित जी और अन्य भद्र पुरुषों को अपनी कोठी में आते देख प्रसन्न चित्त हो उठकर दोनों हाथ जोड़ सब महाशयों को नमस्ते कर कहा कि आइये, पधारिये, सुशोभित हूजिये—

श्रीमान् पण्डित जी ने प्रेम पूर्वक आयुष्मान् कहा और विराज-मान हुए।

अन्य सब महाशय—यथा योग्य कहकर उचित स्थानों पर सुशोभित हुए। आर्य्यसेठ और सुयोग्य पण्डित जी के बीच प्रेम पूर्वक कुशल प्रश्न होने के पश्चात् श्रीमान् पण्डित जी ने कहा कि सेठ जी मेरा मन तो यह चाहता है कि मैं बहुत दिनों तक पुराणों के विषयों को सुनता रहूं परन्तु संसारी कार्य्य इतने लग गये हैं कि जिसके कारण अवकाश नहीं परन्तु फिर भी सुनने की इच्छा है इस लिये आप संक्षेप के साथ कह दें **वेद, बुद्धि**

और सृष्टिक्रम के विपरीत बातें गणेश महाराज की विचित्र २ उत्पत्ति तथा मृतकश्राद्ध सुनाकर पुराणलीलाको इस समय समाप्त कर दीजिये। और फिर समय मिलने पर देखा जायगा।

आर्य सेठ—श्रीमान् की जो आज्ञा।

अन्य महाशयों ने—सेठ जी से कहा कि हमारी भी यही सम्मति है इसलिये आप अपने सेवकों द्वारा पूर्वोक्त श्रोताओं को सूचना देदीजिये कि कल से सायङ्काल के ६ बजे के पश्चात् पुराणों के विषय पर कथन होगा क्योंकि श्रीमान् पण्डित जी भी बनारस से आगये हैं।

आर्य सेठ—ने बहुत अच्छा कह सेवकों को बुलाकर अच्छे प्रकार समझा दिया।

सेवकों—ने सेठ जी की आज्ञानुसार सर्व महाशयों को सूचना दी जिसके अनुकूल द्वितीय दिवस नियत समय पर महाशयगण पधारे।

पञ्चदश परिच्छेद

आर्य सेठ—श्रीमान् पण्डित जी को आते देख उठ कर बड़े प्रेम से नमस्ते कर कहा कि श्रीमान् आइये!

पण्डित जी—आयुष्मान् कह विराजमान हुए—और अन्य श्रोतागणों में से बहुधा सज्जन आकर यथायोग्य के पश्चात् विराजते गये तब श्रीमान् पण्डित जीने कहा कि सेठजी अब आप आरम्भ कीजिये।

आर्य सेठ—ने बहुत अच्छा कह, निम्न लिखित मन्त्र से ईश्वर प्रार्थना की—

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ य० २५। २१॥

हे देवेश! देव विद्वानों! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें। हे यज्ञनीयेश्वर! हे यज्ञ कर्त्ताओ हम आंखों से कल्याण (मङ्गल सुख) को ही सदा देखें। हे सर्वो! हे जगदीश्वर हमारे सब अङ्ग उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें जिनसे हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें।

श्री० पं० जी अब मैं वेद बुद्धि और सृष्टिक्रम के विपरीत बातों का वर्णन करताहूं, देखिये विष्णुपुराण अं० १ अ० १३ राजा वेनके मरने पर देवताओं का उसकी भुजाओं को मथ निषाद और पृथु का उत्पन्न करना।

राजा अंग की सुनीथा नाम पत्नी से वेन नाम पुत्र हुए जो पिता के परलोकगमन होने पर गद्दी पर बैठे जिन्होंने राज्यसिंहासन को सुशोभित करते ही राज्य भर में डोंडी पिटवा दी कि हमारे राज्य में कोई मनुष्य यज्ञ, दान, होम न करे क्योंकि योग भोगका करने वाला हमारे सिवाय कोई दूसरा नहीं। हम ही यज्ञों के स्वामी हैं। इस पर ऋषियों ने राजा को बहुत समझाया परन्तु जब उन्होंने उनकी बात को न माना तब सब मुनियों ने कोपकर आपस में सम्मति कर कहा कि इस पापी राजा को मारडालना चाहिये क्योंकि यह सबके स्वामी विष्णु महाराज की निन्दा करता है यह कहकर मन्त्र पढ़ कुशा को जल में डुबो उसके ऊपर जल छिड़क दिया। राजा तो भगवान् की निन्दा करने से प्रथम ही मर चुका था परन्तु उस पर जल के पड़ने से अच्छी भाँति मृतक होगया।

इत्युक्त्वा मन्त्रपूतैस्ते कुशैर्मुनिगणानृपम्।
निजघ्नुर्निहतं पूर्वं भगवन्निन्दनादिना ॥२९॥

राजा के मरने के थोड़े दिनों के पीछे चारों तरफ़से धूल उड़ती देख ऋषियोंने लोगोंसे पूछा कि यह धूल कहांसे आतीहै तब सबने उत्तर दिया कि श्री महाराज राज्य विना राजा के होगया है इस से चोर लोग सब का धन लूटते और धूल उड़ाते हैं तब सब मुनियों ने पुत्र होने के अर्थ मंत्र पढ़कर राजा की जांघ मथी उसमें से एक अति कुरूप

बहुत ही छोटे डील का काला मनुष्य निकला और ऋषियों से पूंछा कि मैं क्या करूं तब उन्होंने उत्तर में कहा कि "बैठ" इससे उसका नाम "निषाद" हुआ और उसके वंश वाले तब ही से विन्ध्याचल पर्वत पर बसने लगे और बहुधा इन लोगों की चोरी ही जीविका थी। इस पाप रूपी निषादके होने से राजा का शरीर निष्पाप होगया।

तेन द्वारेण तत्पापं निष्क्रान्तं तस्य भूपतेः।
निषादास्ते तथा जाता वेनकल्मषसम्भवाः ॥३७॥

फिर मुनियों ने राजा के शरीर का दाहिना हाथ मथा उस से महाप्रतापी, शुभगुण युक्त पृथु जी उत्पन्न हुए जिनका शरीर अपने तेज से ऐसा प्रकाशित था मानो दूसरी अग्नि की मूर्त्ति थी।

दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिवज्वलन् ॥३६॥

ऐसे राजा के होते ही आकाश से महादेव के कवचादि सब आये और सब लोग प्रसन्न हुए इनके होने से वेन जैसे पापी राजा भी स्वर्ग को चले गये क्योंकि पुं नाम नरक से जो रक्षा करे उसी का नाम पुत्र है।

तत्पुत्रेण जातेन वेनोऽपि त्रिदिवं ययौ।
पुंनाम्नो नरकात् जातः स तेन सुमहात्मना ॥४१॥

राजा पृथु ने गद्दी पर बैठकर प्रजा को सब प्रकार से आनन्दित किया और जब कभी राजा कहीं को जाते तो नदियां थाही होजातीं, समुद्र का जल थम जाता पृथ्वी में अन्न बिना जोते केवल चिन्तना करने से ही उत्पन्न होजाता गायें इच्छानुसार दूध देती थीं परन्तु जिस समय कोई राजा न था उस समय अन्नादि का होना बन्द होगया था इससे प्रजा बड़ी दुःखी थी जब वह राजा हुए तब प्रजा जो भूखों मर रही थी इनकी शरण में आई और निवेदन किया कि बिना राजा के होने से पृथ्वी ने अन्नादि चुरा लिया इस हेतु सब प्रजा दुःखी है अब आप अन्नादि देकर रक्षा कीजिये-यह सुन राजा धनुषबाण लेकर क्रोध से धरणी के मारने के लिये दौड़े तब गाय का वेष धर भागी ब्रह्म आदि लोकों को गई परन्तु जब घूम कर देखा तब २ राजा को धनुष बाण लिये पीछे खड़ापाया इससे अपना बचाव न जानकर मारे भय के कांपती हुई राजा से बोली कि हे राय! क्या हमारे मारने से स्त्री हत्या का आपको कुछ दोष न होगा। हे नृप यदि आप प्रजा के उपकार के अर्थ हमको मारा चाहते हो तो मेरे न होने पर प्रजा कहां रहेगी? यह सुन राजा ने कहा कि तुम हमारी आज्ञा के प्रतिकूल

चलती हो इस लिये मैं तुमको बाणों से उड़ाऊंगा और मैं अपने योग बल से प्रजा को रक्खूंगा यह सुन धरणी फिर काँपने लगी और राजा से प्रार्थना कर कहा कि सब कार्य्य उपाय से सिद्ध होते हैं इसलिये हे नर नाथ ! जो मैं आप को उपाय बतलाती हूं आप वही कार्य्य करें अन्नादि सब औषधियां हम में पच गई हैं सो आप दुध रूप दुह लीजिये आप बहुत प्रकार बछड़े बनाइये जिससे हम पन्हाकर सब पदार्थ चुआवेंगी परन्तु हमको बराबर भी अवश्य करदीजिये जिससे दुधरूपी औषधियां अपने २ स्थान पर जमें यह सुनकर महाराज पृथु जी ने सर्वत्र पृथ्वी पर पहाड़ ही पहाड़ थे धनुष की नोक से तोड़ फोड़कर दूर २ स्थापित करादिये ।

तत उत्सारयामास शैलान् शत सहस्रशः ।
धनुष कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैलाविवर्धिताः ॥८४॥

प्रथम की सृष्टि में ग्राम पुर नगरादि तथा खेतीपाती कुछ नहीं होता थी महाराज पृथु ने पृथ्वी का बराबर कर ग्राम पुरादि बसा दिये और लोग खेती पाती भी करने लगे चूंकि राजाने पृथ्वीके प्राण छोड़दिये इसलिये वह उसके पिता ठहरे इसीसे इसका नाम पृथ्वी हुआ । यही कथा मत्स्य पुराण अ० १० में भी है ॥

कण्ड मुनि से प्रम्लोचा अप्सरा में गर्भ रहना फिर मुनि के शाप के भय से अप्सरा को मूर्च्छा का आना और गर्भ का पसीना की राह निकलना जिसको वृक्षों से पोंछा फिर वायु ने इकट्ठा किया और चन्द्रमा ने पोषण किया उसीसे मराषा का जन्म होना । विष्णु अंश १ अ० १५ ॥

जब प्रचेतसा तपस्या कर रहे थे उस समय कोई राजा नहीं रहा था क्योंकि प्राचीन वर्हिषको नारदजीने ऐसा उपदेश किया था कि वे सब छोड़ धनको तप करने चले गये थे इसलिये पृथिवी पर सब वृक्ष ही वृक्ष होगये कहीं जोतने बोनेको धरती नहीं रही इसलिये बहुतसी प्रजा मर गई क्योंकि वृक्षोंके कारण पवन भी नहीं चलती थी जब प्रचेतसा तपस्या करके निकले तब वृक्षों को देख बड़ा ही कोप किया और मुख से पवन व अग्नि छोड़ी तब वृक्ष जलने लगे पहिले वायु के जोर से वृक्ष उखड़ पड़ते फिर अग्नि से जलते फिर पवन उड़ा लेजाती जब इस भांति बहुत वृक्ष जलगये थोड़े ही रहगये तब वृक्षों

के राजा चन्द्रमा जी ने प्रचेतसों से कहा राजकुमारो ! कोप शान्त करो इन वृक्षों से भी आप लोगों का कुछ काम निकलेगा अर्थात् इनके एक कन्या है ले जावो आधा तुम्हारी तपस्या के तेज से आधा हमारे तेज से इसमें महाज्ञानी दक्ष प्रजापति नाम पुत्र होगा उससे बड़ी सृष्टि चलेगी। यह कन्या वृक्षों को इस भांति मिली कि एक कण्डु नाम मुनि थे वे रमणीक नदी के किनारे तपस्या करते थे उनके चलायमान होने के लिये इन्द्र ने प्रम्लोचा नाम अप्सरा भेजी उस ने मुनि को अपने वशमें करलिया मुनि १०१ वर्ष तक मन्दराचल पर जाय उसके संग बिहार करते रहे एक दिन उसने कहा कि मैं इन्द्र लोकको जाया चाहती हूं आज्ञा दीजिये मुनि उसमें आसक्त तो थे ही कहा कुछ दिन और रह जाओ आपके भयसे वह रह गई इतने में १०१ वर्ष व्यतीत होगये उसने मुनि से कहा फिर मुनिने उसको बिलमाया इसी भांति कई बार कहा सुनी हुई एक दिन मुनि उठे और घब- राते हुए नदी की ओर चले अप्सरा ने कहा कि जाइयेगा मुनिने कहा बोलोमत संध्या करने का समय है काल बीत जावेगा उसने हंसकर कहा सैकड़ों वर्ष होगये आपको सन्ध्या करते नहीं देखा मुनिने कहा सत्य २ कहती है या हँसी करती है। हमको तो तू प्रातः सन्ध्या के पीछे मिली थी यह सायं सन्ध्या का समय है सत्य २ बताओ कितना समय हुआ हास्य न कर। अप्सरा बोली हास्य नहीं करती आप को मेरे संग विहार करते हुए ९०७ वर्ष ६ मास ३ दिन बीते ऋषि बोले सत्य ही कहती है हम तो यही मानते हैं तुम्हारे संग विहार करते एक ही दिन बीता अप्सरा ने कहा कि आपके सामने मैं झूठ क्यों कहती फिर पूछने पर तो ऐसे महात्मा के सामने कोई भी झूंठ न कहेगी यह सुन मुनि ने बड़ा पश्चात्ताप किया—हाय मैंने अपनी सब तपस्या नष्ट करदी। नाना प्रकार से विलाप कर उससे कहा कि हे दुष्टे ! तू अभी इन्द्र लोक को जा नहीं तो मैं तुझे भस्म करदूंगा, इतने में उसको भी मूर्च्छा आगई सर्वाङ्ग से पसीना बहा, मुनि ने बड़ा कोप करके फिर कहा कि चली जा यह सुन मुनि के आश्रम से प्रम्लोचा आकाश मार्ग हो भागी और वृक्षों के पल्लवों से अपना पसीना पोंछने लगी इस कारण जो ऋषि के बीज से उसके गर्भ था वह रोमों की राह निकल वृक्षों में हो रहा पवन ने उसको उड़ा इकट्ठा कर दिया और चन्द्रमा जी कहते हैं कि

हमने अपने किरणों से पोषण कर बढ़ाया उसी से मारिषा नामक कन्या होगई वही मारिषा नाम्नी कन्या वृक्ष आपको देती है।

नोट—पण्डित जी अब तो आप समझगये होंगे कि जिस ऋषि ने ६०७ वर्ष इन्द्र की भेजी अप्सरा के साथ रमण किया परन्तु ऋषि को सन्ध्या ही प्रतीत हुई, ऐसी बेहोशी तो मदोन्मत्त को भी नहीं होसकती इस पर तुर्रा यह ६०७ वर्ष रमण करने में केवल एकही वार गर्भ रहा और वह भी पसीने के मार्ग से निकल गया—हमने तो अभी तक वैद्यक ग्रन्थों एवं डाक्टरी से भी यही देखा सुना है कि पसीना एक प्रकार का मानुष विष है। फिर इसपर वह गर्भ पसीना होकर निकल गया जो पेड़ की पत्तियों में लग गया जिसको वायु ने उड़ाकर इकट्ठा किया और चन्द्रमा ने किरणों से पोषण किया कहिये श्रीमान् यह किस नियम से उत्पत्ति है।

बलदेव जी महाराज का विवाह और रेवतीजी के छोटे करने की सहज रीति। अ० ४ अ० १० ॥

रैवत नाम राजा की रेवती नाम एक कन्या थी राजा उसके विवाह विषय में सम्मति लेने के लिये ब्रह्मा जी के पास गये वहां हा हा हूं हूं नाम गन्धर्व गीत गा रहे थे जब गाना बन्द हुआ तब राजा ने अपनी कन्या के विषय में पूंछा कि किस राजा के साथ विवाह करें, तब ब्रह्माजी ने कहा कि आप किस२ राजा के साथ विवाह करने की इच्छा रखते हैं यह सुन राजा ने कह सुनाया जिसको ब्रह्मा जी ने कहा कि जिन २ के यहाँ आपको विवाह करना अभीष्ट है अब उनके पुत्र पौत्र प्रपौत्र तो क्या सन्तान में भी कोई नहीं रहा इस गाने के सुनने में बहुतसी चतुर्युगियां वीतगई। इस समय अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के द्वापर का अन्त होरहा है इससे अन्य किसीको यह कन्या दीजिये आपके भी बन्धुवर्ग मित्रादि सब नष्ट होगये हैं तब राजा ने फिर पूंछा कि यदि वह लोग नहीं रहे तो जो विद्यमान हैं उनमें से बतलाइये किसको कन्या देवें तब ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार के गुण गा कर कहा कि परमात्मा परब्रह्म ने अपने अंश से आजकल पृथ्वी के द्वारिकानाम पुरी में अवतार लिया है जो बलदेवजीके नाम से प्रसिद्ध हैं वही उत्तमवर है यह सुन राजा पृथ्वीतल पर आये और देखा तो सब मनुष्य छोटे २ और बलहीन होगये थे। राजा ने द्वारिका में जाकर ब्रह्माजी की आज्ञानुसार बलदेव जीके साथ विवाह कर दिया—परन्तु जब बलदेवजी ने देखा कि यह स्त्री तो बहुत ही लम्बी है इसलिये अपने हलसे दूबा दिया जिससे उस समय की जैसी सब स्त्रियां थीं वैसी रेवती भी होगई।

नोट—कहिये श्रीमान् इस बातका भी कुछ ठीक है कि गान सुनते २ बहुतसी चतुर्युगियां व्यतीत होगईं—बलदेव महाराज को पौराणिक पुरुषों ने परमेश्वर का अवतार बताया है फिर उन्हामें मदिरापान के समाचार और सूत का मारना लिखा है क्या श्रीमान् अवतारियों के यही कार्य्य हैं अब यह भी सुन लीजिये कि स्त्रियों के छोटा करने का सहज उपाय बलदेवजी महाराज का हल था।

राजा निमि का मरना फिर देवताओं के मथने पर एक पुत्र का उत्पन्न होना। अंश ४ अ० ५ ॥

एक समय राजा निमि ने यज्ञ करने का विचार कर अपने पुरोहित वसिष्ठ जी से कहा कि आप हमको यज्ञ कराइये। यह सुन वसिष्ठ महाराज ने कहा कि राजन्! आपसे ५०० वर्ष आगे इन्द्र ने यज्ञ कराने का न्योता दिया है इस हेतु मैं प्रथम उनका यज्ञ कराकर तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा ऐसा न हो कि तुम किसी और को बुला लो। राजा ने इसका कुछ उत्तर न दिया, वह इन्द्र के यहां यज्ञ कराने को चले गये। इधर निमि ने गौतमादि को बुला यज्ञ कराने का आरम्भ कर दिया उधर वसिष्ठ जी यज्ञ समाप्त कराकर इधर आये देखा कि आधा यज्ञ होगया। क्रोधित हो सोते हुए राजा को शाप दिया कि जाओ तुम्हारा यह देह न रहे राजा ने उठने पर शाप का वृत्तान्त जान यह कहा, कि इस दुष्ट गुरु की भी देह न रहे, शरीर छोड़दिया राजा के शाप से जब वसिष्ठ जी का देवलोक हुआ तो उनका तेज मित्रावरुण मुनि की देह में समागया और उर्वशी अप्सरा को देख च्युत हो एक कलश में गिरा जिससे वसिष्ठ अगस्त दो पुत्र उत्पन्न हुए इधर यज्ञसमाप्त होने पर जब देवता अपना २ भाग वहां लेने को आये तब गौतमादि ऋषियों ने कहा कि राजा निमि का मृतक शरीर तैल में यथावत् रक्खा हुआ है आप सब आशीर्वाद देकर जिलाइये। देवों ने निमि को बुलाया तब उन्होंने कहा कि देवगण आप सब लोग संसार के ऊपर कृपा करते हैं पर यह नहीं जानते कि उत्पन्न होने से मरने में कितने २ कष्ट होते हैं। इस लिये अब हम जीना नहीं चाहते वरन् प्रत्येक प्राणी की पलक पर बैठना चाहते हैं जिससे सबको स्मरण रहे। यह सुन देवों ने कहा कि अच्छा। उसी समय से प्राणी पलक मारने लगे और राजा के पुत्र न होने के कारण राजाहीन राज्य रहने से चोरों ने बड़ा उपद्रव मचाया। तब ऋषियों ने आकर राजा के शरीर को मथा जिससे एक पुत्र हुआ उसका नाम जनक विदेह होने से विदेह मथे जाने से मिथिये नाम उस बालक के हुए।

नोट—क्या वसिष्ठ जैसे विद्वान् ऋषि को इतना भी ज्ञान न था कि यह शरीर तो वैसे ही अनित्य है फिर इस प्रकार का शाप देना कि तेरी यह देह न रहे उनकी विद्वत्ता का परिचय करा रहा है। अब लीजिये विष्णुपुराण के निर्माता की बुद्धि से भी परिचय प्राप्त कीजिये। जब वसिष्ठ मरने लगे तो उनका तेज तो मित्रावरुण की देह में समागया और उर्वशी अप्सरा को देख.........जो कलश में गिरा उस से दो पुत्र होगये एक वसिष्ठ दूसरे अगस्त। कहिये श्रीमान्! यह कहां तक विद्या और बुद्धि के अनुकूल है। राजा के मरने पर भी यज्ञ होता रहा परन्तु अब तो सूतक को मान सन्ध्यादि कर्मोंका छोड़ देते हैं पूर्णाहुती के समय देवता आये तो उन्होंने उसे जीवित करदिया परन्तु वसिष्ठ ऋषि को किसी ने कुछ भी सुध नहीं ली। क्या यहां भी धन ही के गीत गाये गये तिसपर भी जब ब्राह्मणों ने निमि को पुनर्जीवित करदिया तो राजा ने कहा कि मैं अब जीना नहीं चाहता क्योंकि इसमें बड़े क्लेश हैं प्रत्येक प्राणी के ऊपर उठना, नीचे गिरना, सकोड़ना, फैलाना और चलना, यह पांच कर्म हैं। एवं पञ्च प्राण, पञ्च उप प्राण और ग्यारहवाँ जीवात्मा जिनकी रुद्रसंज्ञा है उनमें उपप्राणों में जो कूर्म है उसका कार्य्य पलक खोलना मूंदना है फिर भला यह कैसे माना जाय कि निमि जबसे पलकों पर आये तबसे यह क्रिया हुई अब राजा के मृतक शरीर के मथने से पुत्र की उत्पत्ति होना भी बाज़ीगरी का खेल है यदि यह सत्य है तो पुत्रहीन पुरुषों को इस औषधि से अपना कार्य्य सिद्ध कर सुख प्राप्त करना चाहिये।

बलदेव जी का मदिरापानकर यमुना को खैंचना।

वि० अंश ५ अ० २५

मानुषरूपधारी धरणीधर शेषावतार बलदेवजी गौओं के साथ वृन्दावन में विहार करते थे जिन्होंने पृथ्वी का बहुतसा भार उतार डाला था कारण पाय पृथ्वी में विचरते थे उनके भोगके लिये वरुण जी वारुणी से बोले कि हे मदिरे! जिससे तू बलदेव जीको सदा प्यारी है। तेरे पानकी उनको इच्छा बनी रहती है इसलिये अब तू उन्हीं के भोग के लिये उनके निकट जा यह सुन वह वृन्दावन में कदम्ब के खोढले में आय बसी। श्रीमान् बलदेवजी महाराज भी विचरते २ वहीं आन पहुंचे क्योंकि उसकी महक उनको दूर से ही आ रही थी। निकट पहुंच मदिरा की धारा देख बलदेव जी परम आनन्दित हुए और गोप गोपियों के साथ यथेष्ठ पान किया। जब अच्छे प्रकार मतवाले होगये तब यमुना से कहा कि हे यमुने! हमको गर्मी अधिक जान पड़ती है। तुम यहां चली आओ हम स्नान करेंगे। यमुना ने मतवाले जानकर उनकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया तब क्रोधित हो हल को किनारे लगाय खींचा और कहा कि हे पापे! न आई न

भाई जाय जहां चाहे चली तो जा अब ऐसा हुआ तब यमुना उस स्थान को छोड़ जहां बलदेवजी महाराज थे वहां आकर बहने लगी। फिर शरीर धारणकर प्रणाम कर बोली कि हे राम! हमपर कृपा कीजिये, हमको छोड़दीजिये। तब बलदेव जीने कहा कि तू हमको और हमारे बलको नहीं जानती। हम खींच कर तेरे सहस्र-धारा करदेंगे जिससे जहाँ चाहे वहां कांग कर जले जाव यह सुन यमुना ने बड़ी स्तुति का तो अपना हल (दुबका) छिपा दिया॥

नोट—श्री पण्डित जी! इस कथासे बलदेवजी महाराजका मदिरापान करना प्रकट होता है परन्तु यह बात देवताओं के विपरीत है तिसपर बलदेवजी महाराज विष्णु महाराज के भाई एवं अवतारी थे। फिर न मालूम व्यास जी ने इस कथा को क्यों लिखा फिर अन्य बातों का क्या कहना!

श्री महाराज पण्डितजी—ने कहा कि सेठजी आज यहां ही विश्राम दीजिये।

आर्यसेठ—बहुत अच्छा।

इतने में सब महाशय चलदिये तब सेठ जी ने हाथ जोड़ सब महाशयों को नमस्ते की। पं० जी आयुष्मान् तथा अन्य सब यथायोग्य कह चलदिये।

॥ इति पञ्चदश परिच्छेद ॥

अथ षोडश परिच्छेद।

आर्यसेठ—श्रीमान् पं० जी को आते देख प्रेमपूर्वक नमस्ते कर कहा कि आइये—विराजिये।

पण्डित जी—आयुष्मान् कहकर बैठ गये इतने में अन्य महाशय भी आये और यथायोग्य के पश्चात् विराजमान हुये। तदनन्तर—

श्री पं० जी ने कहा कि सेठ जी हम विष्णुपुराण से तो वेद और बुद्धि तथा सृष्टिक्रम के विपरीत बातों को सुन तृप्त होगये। अब आप पद्म, अठारह वामन पुराण से सुनाइये।

सेठजीने—बहुत अच्छा कह यथाक्रम कहना आरम्भ किया।

पद्मषष्ठ उत्तरखण्ड

अध्याय ६

बलके शरीर से धातुओं की उत्पत्ति।

जब विष्णु और जालन्धर का घोर युद्ध होरहा था उस समय बल से इन्द्र लड़ने केलिये सम्मुख आये तब उन्होंने भयङ्कर शब्द किया तब जिसको सुन बल हंसे तो उनके मुखसे मोती निकलने लगे ॥१६॥

ननादेन्द्रस्ततो भीमं तच्छ्रुत्वा सबलोऽहसत् ।
हस्तस्तस्यनिश्चेरुर्मुखतो मौक्तिकानि च ॥

प० षष्ठोत्तरखण्ड अ० ६ श्लो० १६ ॥

तब इन्द्र ने अंगकी अभिलाषा के कारण उससे संग्राम न कर उसके अत्यन्त बलकी प्रशंसा करी तब बलने कहा वरदान मांगो। इसको सुन इन्द्र ने कहा कि यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो आप अपना शरीर दीजिये। बल ने कहा कि शस्त्रों से काटकर हमारा शरीर लीजिये, क्योंकि सज्जनों का परम् कार्य्य यही है कि परोपकार करें, तब इन्द्र ने मुद्गर से शरीर काटने का आरम्भ किया परन्तु जब उसका शरीर मुद्गर से न कटा तब सारथी के कहने से वज्र से काटना आरम्भ किया तो अंग का एक भाग तो कनकाचल में, दूसराहिमाचल में तीसरा नोनग में, चौथा गंगाजी में, पाँचवां मन्दराचल में और विजय के अंग से उत्पन्न छठाभाग वज्राकार में गिरा ॥ २३ ॥ कर्म और जाति में शुद्ध होने के कारण से उसकी देहके अङ्ग रत्नबीजों से परिपूर्ण थे। वज्र से हाडों के जो कण गिरे वह छः कोण की मणि होगये तथा नेत्रों से इन्द्रनीलमणि, कानों से मणिका मेदसे मरकत, जीभ से मूंगे, दांतों से मोती, मज्जा से मरकतमणि, नससे गारुत्मनमणि, विष्ठा से कांसा, वीर्य्य से चांदी, मूत्र से तांबा, अङ्ग के उद्वर्त्तन से पीतल, शब्द से वैडूर्यमणि तथा श्रेष्ठ रत्न, नखों से सोना, रक्त से रस, मेद से स्फटिकमणि और मांस से मूंगा इत्यादि सब रत्न बलके शरीर से उत्पन्न हुए।

वज्राकरे पपातांशः षष्ठश्च विजयाङ्गजः ॥२३॥
तस्य जातिविशुद्धस्य परिशुद्धेन कर्म्मणा ।

कायस्यावयवाः सर्वे रत्नबीजत्वमागताः ॥२४॥
वज्रादस्थिकणाः कीर्णाः षट्कोपामणयोऽभवत् ॥२५॥
मज्जोद्भवं मरकतं गारुत्मतमभून्नसा ।
कांस्यं पुरीषं रजतंवीर्यं ताम्रञ्चमूत्रजम् ॥२७॥
अंगस्यो द्वर्तनाज्जातं पित्तलं ब्रह्मवीतिकाः ।
नदाद्भेदूर्यंलुत्पन्नं रत्नंचारुतरं तथा ॥२८॥

नोट—पदार्थ एवं भूगर्भविद्या के ज्ञाता विचारपूर्वक देखें तो सही कि बल के शरीर एवं मलमूत्र से चांदी, कांसा तांबा इत्यादि क्या २ उत्पन्न होगया प्यारे सनातनियो ! यदि बल की देह से रत्नादि उत्पन्न हुए तो क्या पहिले पृथ्वी पर रत्नादि न थे ? शास्त्रों में पृथ्वी को रत्नगर्भा कहते हैं क्या यह मिथ्या ही है ?

ज्वर की अद्भुत उत्पत्ति और उसकी अपूर्व औषधि ।

अध्याय २५० में लिखा है कि श्री कृष्ण महाराज बाणासुर के संग्राम को गये और वहां उसकी सहायता के लिये महादेव जी उपस्थित थे जब दोनों में संग्राम हुआ तब महादेव ने कृष्ण पर तापज्वर को छोड़ा तो कृष्ण ने शीतज्वर से उसका निवारण किया । कृष्ण और महादेवजी से छोड़े हुए यह दोनों ज्वर उन्हीं की आज्ञा से मनुष्यलोक में प्रवेश करते हुए जो मनुष्य कृष्ण जी और महादेव जी का युद्ध सुनते हैं वे सब ज्वर से छूटकर रोगरहित होजाते हैं । ३३ । ३४ ॥

नोट—ज्वर की उत्पत्ति और इलाज को जानकर हम नहीं जानते कि वर्त्तमान समय में जब कि ज्वर से सम्पूर्ण प्रजा दुखी होरही है क्यों नहीं धर्मसभा इस संग्राम की कथा सुनाकर आरोग्यता प्रदान कराती ।

राजा सगर की रानी के साठ हज़ार पुत्रों का उत्पन्न होना ।

ब्रह्माण्ड ०पो० पा० अ० ५१

इक्ष्वाकुवंश में सगर नाम एक प्रसिद्ध राजा थे उनके केशनी और सुमति यह दो स्त्रियाँ थीं परन्तु सन्तान किसी के न थी इसलिये पुत्रको इच्छासे

कैलासपर्वत पर आकर तपस्या करने लगे कालांतर में पार्वतीनाथ उनके पास आये जिसको देख राजाने रानी सहित प्रणाम कर श्री पुत्र होने का वरदान मांगा तब शिवजीने कहा कि हम प्रसन्न होकर यह वरदान देते हैं कि तुम्हारी एक स्त्री के अभिमान से भरे हुए महाशूरवीर साठ हज़ार पुत्र होंगे और वे सब एक ही स्थान पर एक दिन में ही नष्ट होजायंगे और एक स्त्री से वंशकी रक्षा करने वाला महाशूरवीर एक पुत्र होगा ऐसाकह अन्तर्ध्यान होगये राजाभी अपने नगर को चले गये फिर दोनों के गर्भ रहा और समय पूरा होने पर सुमति स्त्रीके एक तूम्बी उत्पन्न हुई और केशिनी स्त्री के देवताओं के समान रूपवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ तब राजा सगरने उस तूम्बीके फेंकदेने का विचार किया उसी समय भगवान् और्व ऋषि वहां आए और कहा कि राजन् ! आप ऐसा साहस मत कीजिये इस तूम्बी के भीतर पुत्र हैं और तूम्बी के भीतर से जो बीज निकलें उनकी यत्न से रक्षा कीजिये आप इस तूम्बी के बीजों को घीसे भरे हुए किसी पात्र में रखिये तब आपको साठ हज़ार पुत्र मिलेंगे ॥

सम्यगेवं कृते राजन् भवतोमत्प्रसादतः ।
यथोक्त संख्या पुत्राणां भविष्यन्ति न संशयः ॥४३॥

राजा ने ऋषि के वचनानुसार कार्य्य किया अर्थात् राजा ने एक २ बीज को पृथक् २ कर घी के बरतनों में रखदिया और पुत्रों की रक्षा के निमित्त एक २ धाय सब बरतनों के समीप नियत करदी फिर बहुत काल बीतने पर महातेजस्वी महाबली साठहज़ार पुत्र होगये ।

एवं क्रमेण संजातास्तेनयास्ते महीपते ।
ववृधुः सर्वशो राजन्षाष्ठिसाहस्रसंख्यया: ॥४७॥

वह राजपुत्र बड़े होने पर बड़े २ कुकर्म करके देवताओं को क्लेशित करने लगे तब वह ब्रह्माकी शरण में गये, उन्होंने कहा कि तुम सब अपने २ घर जाओ इन सबका थोड़े दिनों में नाश हो जावेगा ।

फिर कुछ दिनों के बाद राजा ने यज्ञ करने का आरम्भ किया और घोड़ा छोड़ा । सब पुत्र उसकी रक्षा में लग गये घोड़ा पृथ्वी पर घूमता हुआ समुद्र के तट पर आया तो अत्यन्त यत्न से रक्षा करने पर भी कहीं अन्तर्ध्यान होगया सब पुत्रों ने आकर राजासे कहा राजाने फिर सबको उसके खोजने के लिये भेजा परन्तु जब ढूंढने पर घोड़ा और चुरानेवाला न मिला तब लौटकर पिता से कहा, उस समय राजा को क्रोध आया और कहा तुम अन्य देशों में

ढूंढने को आज्ञा दे चलादिये। अनन्तर सगर के पुत्रों ने पृथिवी को कुदार और फावड़ों से यत्नपूर्वक खोदना आरम्भ किया उस समय खोदने से वरुण के स्थान समुद्रको बड़ा दुःख हुआ और चारों ओर से समुद्र खोदने से उसके रहनेवाले असुर, सर्प, राक्षस और अनेक प्रकारके जन्तु सगरपुत्रों से पीड़ा पाकर घोर शब्द करने लगे परन्तु बहुत काल खोदने पर भी कहीं घोड़ा नहीं मिला अन्तको सगर के पुत्रों ने बड़ा क्रोध किया तब उत्तर पाताल के कोने में खोदना आरम्भ किया और पाताल तक खोदते चलेगये वहां देखा कि पृथिवी में घोड़ा घूम रहा है उसके निकट कपिल महात्मा जी भी विराजमान हैं॥

चरन्तमश्वं पाताले ददृशुर्नृपनन्दनाः ॥१५॥
ददृशुश्चमहात्मानं कपिलं दीप्त तेजसम् ॥१७॥
संप्रहृष्टास्ततः सर्वे समेत्य च समंततः ॥१६॥

घोड़े को देख सब प्रसन्न हुए और महात्मा का निरादर करने के लिये कालके वशीभूत हो क्रोध सहित घोड़ा पकड़ने को दौड़े राजपुत्रों का यह व्यवहार देख महात्माको बड़ा क्रोध आया फिर नेत्र खोलकर सगर के पुत्रों पर अपना तेज डाला जिसके लगतेही सगर के पुत्र भस्म होगये। नारद मुनिने पुत्रों के नष्ट होजाने का सब वृत्तांत राजा से कहा जिसको सुन राजाको बड़ा शोक हुआ।

पण्डितजी—राजा सगरके साठहज़ार पुत्रों की उत्पत्ति को सुनकर भी आपके चित्त में क्या यह प्रश्न नहीं हुआ कि यह पुराण व्यास महाराजके कहे हुवे नहीं हैं। देखिये स्त्री के तुम्बी और उनके बीजों को घी के मटकों में रखने से पुत्र उत्पन्न होगये परन्तु तुम्बी की लम्बाई भी नहीं लिखी न जाने कितनी बड़ी होगी जिसमें ६० हज़ार बीज थे।

देवताओं से वृक्षों की उत्पत्ति।

वामनपुराण—अध्याय १७ में लिखा है कि आश्विन मास में जब ईश्वर की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ तब देवताओं में से कामदेव के कदम्ब कुबेरके वट, महादेव के हृदय में धतूरा, ब्रह्मा की देहके मध्यभाग से खैर, विश्वकर्मा के शरीर से कण्टकि, पार्वती के हाथ के तलवे में कुन्द, गणेशजीके मस्तक में संभालू, धर्मराज के दहिने पांव में पलाश, बायें में काला गूलर,

स्वामिकार्तिक के शरीर से जीया पोता, सूर्य्य के शरीर से पीपल, कात्यायनी के शरीर से जांटी, लक्ष्मी के हाथ में बैल, सर्पों से शरस्तंब और वासुकी सर्प की फैली हुई पूंछ के पृष्ठभाग में सफ़ेद और काली दूब, साध्य देवताओं के हृदय में हरिचन्दन वृक्ष उपजा ऐसे जोर जिसके शरीर से उत्पन्न हुए तिस २ में उनकी प्रीति हुई।

कन्दर्पस्यकराग्रेतु कदम्बश्चारुदर्शनः ।
तेन तस्य पराप्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते ॥२॥
यक्षाणामाधिपस्यापि मणि भद्रस्य नारद ।
वटवृक्षः समभवत्तस्मिंस्तस्यरतिः सदा ॥३॥
महेश्वरस्य हृदये धत्तूर विटपः शुभः ।
संजातः स च सर्वस्य रति कृत्तस्य नित्यशः ॥४॥
ब्रह्मणो मध्यतो देहाज्जातो मरकतप्रभः ।
खदिरः कंटकी श्रेयान् भवद्विश्वकर्मणः ॥५॥
गिरिजायाः करतले कुन्द गुल्मस्त्वजायत ।
गणाधिपस्य कुम्भस्थो राजते सिंधुवारकः ॥६॥
यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे ।
कृष्णोदुम्बर कोरौद्रो जातः क्षोभकरोऽव्ययः ।
स्कन्दस्य बन्धुजीवश्चरवेरश्वत्थ एव च ॥
कात्यायन्याः शमीजाता विल्वोलक्ष्म्याः करेऽभवत् ।
नागानां मुखतो ब्रह्मञ्छरस्तंबोव्यजायत ।
वासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्वासितासिता ॥९॥
साध्यानां हृदये जातो वृक्षोहरित चन्दनः ।
एवं जातेषु सर्वेषु तेन तत्र रतिर्भवेत् ॥१०॥

नोट—इस उत्पत्ति को पढ़कर आपही विचार करें कि यह ही व्यासजी महाराज लिखित पुराण हैं।

श्रीपण्डितजी—सेठजी अब समय बहुत होगया इसलिये अब बस कीजिये।

सेठजी—ने कहा कि बहुत अच्छा।

सब महाशय चलदिये।

सेठजीने—श्री० पं० जी को नमस्ते की। श्री० पं० जी आयुष्मान् कह तथा अन्य यथा योग्य के पश्चात् चले गये। सेठजी अपने कार्य्य में लगगये।

इति षोडश परिच्छेद।

अथ सप्तदश परिच्छेद।

सेठजी—ने श्रीमान् पं० जी आदि को आते देख नम्रता पूर्वक नमस्ते कर कहा कि आइये!

पं० जी—आयुष्मान् तथा अन्य महाशयों ने यथायोग्य कहा और विराजमान हुए।

सेठजी—ने पं० जी की तबियतका हाल पूछा कहा कि श्री महाराज आज मैं आ० शेष पुराणों से वेद, बुद्धि तथा सृष्टिक्रम के विपरीत कथायें सुनाता हूं। देखियेः—

विश्वामित्र के शाप से सरस्वती में रक्त की धारा का होना फिर अन्य ऋषियों के वरदान से शुद्ध होना।

वामनपुराण—अध्याय ४० में लिखा है कि विश्वामित्र और वसिष्ठ मुनिके बीच तपरूपी ईर्षाके कारण बड़ा वैर होगया था एक समय विश्वामित्र ने सरस्वती नदीको बुलाकर कहा कि वसिष्ठमुनि को अपने वेग से यहां बहा ला तब मैं उनको मारूंगा इसने दुःखित हो वसिष्ठजी के समीप जा सब

वृत्तान्त कहा, उनको बहाकर ले चली तब वसिष्ठ महाराज ने सरस्वती की स्तुति की। इधर सरस्वती ने वसिष्ठ को विश्वामित्र के समर्पण किया त्योंहीं उन्होंने उनके मारने के लिये प्रहार किया। तब सरस्वती ब्रह्महत्या के भय से वसिष्ठ को उलटा बहाने लगी उस समय विश्वामित्र जी ने क्रोधित हो कहा कि लोहयुक्त राक्षसों से सेवित रहेगी। वह उसी प्रकार बहने लगी जिसको देख देवता दुःखित हुए बहुत काल पीछे बहुधा मुनि तीर्थयात्रा के अर्थ सरस्वती पर गये फिर उसको बुला कारण को जान प्रसन्न हो अरुणानदी को उसमें मिलाकर राक्षसोंकी मुक्ति के अर्थ वहांपर संगम तीर्थ की मुनियों ने कल्पना की जो कोई इस संगम पर तीन दिन वासकर स्नान करता है वह पापों से छूट जाता है घोरकलियुग में भी स्नान करने से मुक्ति होती है इसके पीछे सब राक्षस संगम में स्नानकर स्वर्ग को चले गये।

नोट—क्या सरस्वती भी कोई शरीरधारी स्त्री थी और जब सरस्वती संगम में स्नान करने से पापों की निवृत्ति होकर मुक्ति होजाती है तो फिर सत्यादि यमनियम के पालन करने की क्या आवश्यकता? तथा इस संगमका जब ऐसा प्रताप है तो फिर अपने पतित भाइयों को स्नान कराकर शुद्ध करलेने में क्या हानि ?

ब्रह्माके कानोंसे दिशाओंकी उत्पत्ति

वाराहपुराण—अध्याय २९ में लिखा है कि जब ब्रह्मा को चिन्ता हुई तब ब्रह्मा के कानों में दश दिशा उत्पन्न हुईं।

प्रादुर्बभूव श्रोत्रेभ्यो दशकन्या महाप्रभाः।
पूर्वाच दक्षिणाचैव प्रतीचिचोत्तरा तथा ॥२॥

राजा विपश्चितसे नरकियों को एक अनोखा लाभ। मारकण्डेय अ० १४।

जब राजा विपश्चित मरकर नरक को गया तब उसने यमदूत से कहा कि मैं नाना प्रकार के धर्मकार्य करता रहा फिर मैं क्यों नरक को आया तब

यमदूत ने कहा कि तुमने थोड़ा सा पाप पिछले जन्म में किया है उसको मैं तुम्हें बताता हूं देखो विदर्भदेश की राजकन्या पीवरी नाम स्त्री ऋतु से शुद्ध हुई तब तुमने उसके साथ गमन नहीं किया इस हेतु जो ऐसा करते हैं वह पितृ के ऋण से पापदोषी होकर नरक में गिराये जाते हैं यही तुम्हारा पाप है इसी से नरक भोग करायागया अब तुम स्वर्गको चलो तब राजा ने कहा जहां तुम ले चलोगे मैं वहां ही चलूंगा परन्तु यह बतलाओ कि यह लोग जो अति दुखी हैं कोई कुछ कोई कुछ दुःख उठा रहा है यह क्यों उठा रहा है ? अनेक जन्म में जो पाप वा पुण्य जान या अनजान से उत्पन्न होते हैं वह सब कर्मों का फल है, आत्मा के साथ रहता है देहसे या मनसे या वचनसे जिस प्रकार जो मनुष्य करता है उसी भांति उसके फल को पाता है दूसरी नहीं। अर्थात् बिना पाप वा पुण्य के किये कोई भी सुख अथवा दुःख नहीं भोगता। जिस प्रकार ये पापी पुरुष इस घोर नरक में रहकर दुःख भोग रहे हैं इसी प्रकार हे राजन्! पुण्यवान् मनुष्य स्वर्ग में देवता, गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराओं के साथ गीत तथा नृत्यादि द्वारा अपने पुण्य का फल भोगकर फिर देवता मनुष्य वा तिर्यक् योनि को प्राप्त होते हैं।

अकुर्वन् पापकंकर्म पुण्यम्वाप्यातिष्ठते ।
यद्यत्प्राप्नोति पुरुषो दुःखंसुखमथापिवा ॥२३॥
प्रभूतमथवा स्वल्पं विक्रियाकारि चेतसः ।
तावत्तावस्य पुण्यंवा पापंवाप्यथचेतरत् ॥२४॥
क्षपयन्ति नरा घोरं नरकान्तर्विवर्तिनः ।
तथैव राजन्! पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैःसह॥२६॥
गन्धर्व सिद्धाप्सरसां गीताद्यैरुपभुज्यते ।
देवत्वे मानुषत्वेच तिर्यक्त्वेच शुभाशुभम् ॥२७॥

सविस्तर वर्णन करने के पीछे यमदूत ने कहा कि अब मैं सब आपको सुना चुका और सब नरक दिखाचुका अब आप दूसरे स्थान को चलिये जब राजा यमदूत को आगे कर चलने को उपस्थित हुए तब नारकी लोग जो कष्ट में पड़े थे बोले कि हे राजन्! आप हम सभों पर कृपा करके एक घड़ी और यहां ठहर जाइये क्योंकि जो हवा आपके शरीर से होकर आकर आती है उससे हम लोगों को बड़ा आराम मिलता है। अध्याय १५ श्लो० ८८ ॥

प्रसादंकुरु भूपेति तिष्ठतान्वमुहूर्त्तकम् ।
त्वदङ्गसङ्गी पवनोनमोह्लादवतेहिनः ॥

जितने परिताप या दुःख जो हम लोगों के शरीर में हैं वह सब इस हवा के लगने से छूट जाते हैं, इसलिये ऐ नर व्याघ्र ! हम सभों पर दया कीजिये ॥

परितापंच गात्रेभ्यः पीडाबाधाश्च कृत्स्नशः ।
अपहान्ति नरव्याघ्र दयांकुरु महीपते ! ॥४६॥

राजा नारकियोंके इस वचनको सुन यमदूतसे पूंछने लगे यह लोग मेरे रहनेसे क्यों प्रसन्न होते हैं ? । मैंने मृत्युलोक में कौनसा पुण्य किया जो इन लोगों के लिये आनन्ददायक होरहा है सो तुम मुझे बतलाओ । यमदूतने कहा कि ऐ राजन् ! जो आपने देवता, पितर और अभ्यागत इत्यादि को पहले तर्पण करके शेष अन्न खाकर अपना शरीर पाला था और जो कि आपका मन हर घड़ी इन्हीं बातों में रहता था इस कारण तुम्हारे अंग की स्पर्श हुई वायु आनन्दको देनेवाली है जिसके स्पर्श से इन सब पापकर्मी लोगोंको दंडका कष्ट नहीं जान पड़ता ।

पितृदेवातिथिप्रेष्याशिष्टेनान्नेन ते तनुः ।
पुष्टिमभ्यागतायस्मात्तद्गतञ्च मनोयतः ॥५२॥

तब राजा ने कहा हे यमदूत ! मेरी समझ में ब्रह्मलोक आदि स्वर्ग में वह सुख नहीं है जो सुख दुःखीलोगोंकी रक्षा करने से मनुष्यों को प्राप्त होता है यदि मेरे रहने से इन नरकियोंको दण्ड का कष्ट नहीं जान पड़ता तो मैं इन दुःखी लोगों के लिये यहां ही रहूंगा तब यमदूत ने कहा कि यह धर्म और इन्द्र आपके लेने के लिये आये हैं जहां आपका जाना आवश्यक है सो चलिये । धर्म ने कहा कि ऐ राजन् ! तुमने मेरी सब प्रकार से उपासना की है इसलिये मैं तुमको स्वर्ग को ले चलूंगा इसपर इन्द्र ने कहा कि यह पापीलोग अपने पाप कर्म्मों की सज़ा भोग रहे हैं और आपने पुण्यकर्म किया है इसी लिये आपको स्वर्ग जाना होगा फिर राजाने कहा आप दोनों यह बतावें कि मेरे पुण्य का प्रमाण कितना है तब धर्म ने कहा जिस प्रकार आकाश में तारे, समुद्र के जल में कण और गङ्गाके किनारे की बालु और महावृष्टि के बिन्दु अगणित हैं उसी प्रकार हे राजन् ! तुम्हारे पुण्य की भी गिनती नहीं । जबसे तुम इन नरकियों पर कृपा कर रहे हो तबसे अब तक तुम्हारा समय सौ हज़ार वर्षका छःतीस

होगया। इसलिये अब आप स्वर्ग को चल वहां का सुख भोगें। यह पापीलोग अपने कर्मों का फल इस नरक में भोगेंगे। तब राजा ने कहा कि यदि हमसे इन लोगों की ही भलाई नहीं हुई तो अन्य कोई हमसे भलाई की आशा कैसे करेगा। अतः हे देवराज! जो कुछ हमारा सुकृत (पुण्य) है उससे यह नरकी जन अपने कष्ट से छूटजावें।

अविन्दवो यथाम्भोधौ यथावादिवितारकाः।
यथावावर्षतोधारा गंगायांसिकतायथा ॥७१॥
असंख्येयामहाराज! यथा विन्द्वादयोह्यपाम्।
तथा तवापि पुण्यस्य संख्यानैवोपपद्यते ॥७२॥
अनुकम्पयामिमामद्य नारकोष्विह कुर्वतः।
तदेवशतसाहस्त्रं संख्यामुपगतं तव ॥७३॥
कथं स्पृहां करिष्यन्तिमत्सम्पर्केषु मानवाः।
यदि मत्सान्निधावेषामुत्कर्षोनोपजायते ॥७५॥
तस्मात् यत्सुकृतं किञ्चिन्ममास्तित्रिदशाधिप!।
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनोयातनांगताः ॥७६॥

तब इन्द्र ने राजा से कहा कि आपको वैकुण्ठ हुआ और देखो यह नरकी लोग भी नरक के कष्ट से छूट गये। राजा के ऊपर फूल बरसने लगे और विष्णु भगवान् राजा का हाथ पकड़कर विमान में बिठाकर वैकुंठ लेगये।

ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः।
विमानंचाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ॥७८॥

नोट—इस कथा में पूर्वापर विरोध है कारण कि पूर्व तो यह कहा कि अपने कर्म अपने ही किये सुख या दुःखदायक होते हैं और बिना कर्म का फल भोगे कोई सुख वा दुःख नहीं पाता और अन्त में यह उक्ति कि राजा ने अपने पुण्य का फल नरकियों को देदिया जिससे नारकी नरक से छूटगये।

एक राजाकेसाथ हारिणीका वार्त्तालाप

मारकण्डेयपुराण—जि० २ अध्याय ६६ में लिखा है कि स्वरोचि अपने तीनों पुत्रोंको पृथक् २ राज्य देकर ... ... आप अपनी स्त्रियों से विहार करने लगे, एक समय शिकार को गये और सुअर के पीछे दौड़े तब एक हरिणी ने आकर कहा कि आप इस बाण से मुझको मारिये सुअर मारने से क्या लाभ यदि मुझको मारोगे तो मैं अपने दुःख से छूट जाऊंगी तब राजाने कहा तुझको क्लेश क्या है ? हरिणी ने कहा कि मैं जिस पुरुषको चाहती हूं वह अन्य स्त्री पर आसक्त है तब राजा ने कहा कौनसा तेरा पति है जो तुझको नहीं चाहता, वह कौन पुरुष है जिसको तू चाहती है तब हरिणी ने कहा कि मैं तुम्हींको चाहती हूं, तुम्हींने मेरा मन हर लिया है, तुमको औरों से प्रीति है इस लिये मैं अपने जीवनको वृथा समझती हूं तब राजा ने कहा कि तू हरिणी है मैं मनुष्य हूं मेरा तेरा संयोग किस प्रकार से होसकता है, हरिणी ने कहा जो आप प्रसन्न हो मुझसे भोग करेंगे तो फिर जो कुछ आप चाहेंगे वह सब आप को प्राप्त होगा जब राजा ने उसके साथ भोग किया तो उसी समय वह सुन्दर स्त्री होगई ॥ २१ ॥

आलिलिङ्ग ततस्तांतु स्वरोची हरिणाङ्गनाम् ।
तेन चालिङ्गितासद्यः साभूद्दिव्यवपुर्धरा ॥२१॥

तब स्वरोचि ने पूछा तू कौन है तब उसने कहा कि मैं वनकी देवता हूं देवता लोगों ने मुझसे विनय कर कहा कि तुम मनुको पेदा करो इस कारण मैंने आपसे कहा, यह सुन स्वरोचिने हरिणी से भोगकर एक अपने समान तेजवान पुत्र उत्पन्न किया तब देवताओं ने फूलों की वर्षा की और द्युतिमान उसका नाम रक्खा गया ॥

तस्यतेजः समालोक्यनामचक्रे पिता स्वयम् ।
द्युतिमानिति यनास्य तेजसा भासितादिशः ॥२८॥

नोट—राजाका हरिणी से भोग करना और उसका स्त्री होना आपके विचारने योग्य है ?

श्रीमद्भागवत् पञ्चमस्कन्ध के प्रथम अध्याय में लिखा है कि राजा प्रियव्रत ने यह विचारकर कि सूर्य्य सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता है इस कारण आधे जगत् में रात्रि रहती है उसको मैं दिन करूंगा ऐसा विचारकर अपने प्रकाशमय रथ पर बैठके सूर्य्यके समान घूमने लगा।

येवा उहृत्रथ चरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्तसिन्धव आसन्यत एवकृताः सप्तभुवो द्वीपाः ।३१॥

महाराज प्रियव्रतके रथके पहिये से जो खाई बनी वही सात समुद्र होगये और जो भूमि उनके बीच में रहगई वह जम्बू प्लक्ष और शालमली आदि सात द्वीप के नाम से प्रसिद्ध होगई।

नोट—कहिये श्रीमान् क्या पहले समुद्र न थे?

मनुकी पुत्री इला का पुत्र होजाना।

श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्द अध्याय १ में लिखा है कि सूर्यवंश के आदि पुरुष महात्मा मनुके दश पुत्र थे उनकी उत्पत्ति से प्रथम मनुने महर्षि वसिष्ठ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया जिसके प्रताप से मनुकी स्त्रीके गर्भ से इला नामकी कन्या उत्पन्न हुई जिसको देख मनुको बड़ा असन्तोष उत्पन्न हुआ उन्होंने वसिष्ठसे कहा कि यह उलटा कार्य्य क्यों हुआ मैंने जो पुत्र की प्राप्ति के लिये यज्ञ किया था उससे पुत्री उत्पन्न क्यों हुई वसिष्ठजीने उत्तर दिया कि होता (आहुति देने वाले) के उलटे संकल्प से यह उलटा फल हुआ परन्तु मैं अपने तेज से तुमको सपुत्र बनाऊंगा ऐसा कहके वसिष्ठने विष्णु की स्तुति की उससे प्रसन्न होके जो विष्णु ने वरदिया उसी वर के प्रताप से मनु की पुत्री इला पुरुष होगई और उसका नाम सुद्युम्न रक्खा गया ॥ २१ । २२ ॥

एवं व्यवसितो राजन् भगवान्स महायशाः ।
अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥२१॥
तस्मैकामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः ।
ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥२२॥

नोट—न जाने हमारे पौराणिक भाई इस विचित्र रीति से अब क्यों नहीं कार्य्य लेते। देखिये लड़की को पुत्र करदेनेका क्या सरल उपाय है।

व्यासजीके पुत्र की इच्छा से भगवती महादेव का तप करना और महादेव से बर पाना फिर घृताची को देख कामातुर हो-वीर्य्यपात हो अरणी में गिरना और शुक का उत्पन्न होना।

देवीभागवत स्कन्द १ अ० १०

मेरु पर्वत पर व्यासजी ने एकाक्षरी मन्त्र जप भगवती और शिव का ध्यान निराहार सौ वर्ष तक किया कि जिसमें हमारे अग्नि, वायु अन्तरिक्षके तुल्य पुत्र उत्पन्न हो इसको देख इन्द्र बड़ा व्याकुल हुआ और वह महादेव के पास गया तब महादेव जीने कहा तुम संशय मत करो क्योंकि वह शक्ति सहित हमारा पुत्र के हेतु तप करते हैं इन्द्रासन के लिये नहीं तुम कुछ चिन्ता न करो हम जाते हैं यह कह व्यासजी के पास पहुंचे और कहा सब गुण सम्पन्न तुम्हारे पुत्र होगा वह तपस्या करते रहे एक दिन अरणी सहित गुप्त अग्निको अग्निकी इच्छा करके मथने लगे उसी समयमें पुत्र होनेकी इच्छा हुई जैसे मंथान और अरणी के संयोग और मंथन से अग्नि उत्पन्न होती है वैसे ही हमारे क्योंकर पुत्र उत्पन्न हो सकता है क्योंकि स्त्री तो हमारे है ही नहीं और स्त्री करना बंधन का हेतु है देखो शिवजी ऐसे महात्मा सो भी नित्य कामिनी की फांस में फंसे रहते हैं इस चिन्ता में लग रहे थे कि इतने में घृताची नाम अप्सरा दिव्य रूप धारण किये हुये आकाश में दीख पड़ी मुनि जो घृतव्रत थे कामातुर हो चिन्ता करने लगे कि अब मैं क्या करूं यह मुझे छलने के लिये आई है सम्पूर्ण महात्मा और तपस्वी मुझे हंसेगे देखो १०० वर्ष तपस्या करके भी कामके वशीभूत होगये इसके उपरांत यह गृहस्थाश्रम के सुख जो पुत्र उत्पन्न होनेके समय होते हैं वह भी इस से न होगा क्योंकि यह तो भोग भुगाकर आकाशको चली जायगी इसलिये उन्होंहि कहा कि यह हमारे योग्य नहीं है अप्सरा आपके भयसे शुकीका रूप धारण करके निकल गई व्यासजी बड़े विस्मित हुये कामातुर तो हो ही गये थे बहुत मन खींचने पर भी न छिपा मुनिका वीर्य्य अरणी (ढाक की लकड़ी) में पतित होगया वह अधिक अरणीको मथने लगे उसमें व्यासजी के आकार का पुत्र उत्पन्न हुआ। शुकीको देखकर पतित हुआ इसलिये पुत्रका नाम शुक रक्खा। सब देवताओं ने आकाश से वर्षाकी और प्रसन्न हो सब उनके स्थान

पर आये वह पढ़ने लगे वेदविधिसे मुनिने यज्ञोपवीत कराया और बृहस्पतिको गुरु करके चारों वेद षट्शास्त्र पढ़े और गुरुदक्षिणा देकर पिताके पास आये।

नोट—इस कथा के देखने से ज्ञात हुआ कि इन्द्र एक क्षुद्र कोटिका राजा और तपस्वियों का बहुवायत से विरोधी था जैसा उस के आचरणों से विदित होता है।

(२) क्या व्यासर्षि ऐसे अज्ञ थे कि बिना स्त्रीके पुत्र की कामना की ?

(३) अरणी अर्थात् ढाककी लकड़ी पर.........पात होने से पुत्र उत्पन्न होगया ?

(४) 'शुचिर् पूती भावे' धातुसे शुक शब्द बनता है यदि शुकी को देखकर शुक नाम रखलिया तो रेफकी अनुवृत्ति कहां से आई जो कि शुक्र कहा जाता है व्याकरणाभिमानी पौराणिकी इसे सिद्ध करें ?

देवी भागवत ।

स्कन्द २ अ० १

एक उपरिचर नाम चेदिदेशके राजा हुये जोकि अति धार्मिकसत्यसागर और द्विजपूजक थे, इनकी तपस्या से संतुष्ट होकर इन्द्र ने इन्हें स्फटिकमणिका एक विमान दिया जिस पर चढ़ कर वह अंतरिक्ष में फिरा करता था। इनकी स्त्री का नाम गिरिका था जिस में इन्होंने ५ पुत्र उत्पन्न करके अन्य २ देशोंके राजा कर दिये थे फिर एक दिन गिरिका ऋतुस्नाता थी उसी दिन राजा के पिताने कहा कि श्राद्ध करने के लिये मृग मारलाओ यह बड़ा धर्म संकट हुआ।

चौपाई।

इत ऋतुमती नारि नहिं जाई। गर्भपात पातक स्यहि भाई।
पिता वचन माने नहिं जोई। पापपुञ्ज ताहू कहँ होई॥

पर वे पिता के वचन मान शिकार करने ही चले गये,वहां वन में जाकर जिससे कि ऋतुस्नाता स्त्रीका स्मरण था इससे वीर्य्य च्युत हुआ उसको यह विचार के कि स्त्रीके निकट भेजेंगे राजाने बरगद के पत्तों के दोने (मधर) में स्थापित कर दिया कि हम सब अमोघ वीर्य्यवान हैं जो यहां से वीर्य्य प्रेरित करेंगे तो पुत्र ही होगा। एक बाज जो राजा करके पालित संग ही था उस से

कहा कि इसे हमारी स्त्री के निकट पहुंचावो, यह सुन वह चौंच में कन्दर्पयुक्त वट पत्र को लेके आकाशमार्ग को उड़ा कि अन्य कोई बाज मांस जान छीनने लगा इस पर बड़ा युद्ध हुआ और वह वटपत्र का दौना यमुनाजी में गिर पड़ा बाज जहां के तहां चले गये, उसी समय एक अद्रिका नाम अप्सरा (जो कि यमुना में स्नान कर रही थी) ने एक ब्राह्मण (जो कि संध्या करने में उद्यत थे) के चरण कामातुर होकर आ पकड़े ब्राह्मण ने शाप दिया कि तू मछली हो वह यमुनाजी में मछली हो पतित (गिर पड़ी) हुई और उसी समय उन दौने का वीर्य खागई दश मास के पश्चात् किसी मत्स्यघाती ने उसे पकड़ उदरविदारण किया तो दो मनुष्याकार जीव निकले कि जिन में एक पुत्र और एक कन्या था, उन्हें देख विस्मित होकर उन्हीं राजा उपर चिरके पास लेगया क्यों कि वह राजा ही के आकार के से थे, इस से पुत्र को अपने सदृश समझ के राजा ने ग्रहण किया बालक तो अति धार्मिक सत्य सागर, महातेजस्वी और निश्चकिता केतुल्य पराक्रमी मत्स्य नाम राजा हुआ और जो कन्या थी वह उसी मत्स्यजीवी को देदी कि जिस के काली मत्स्योदरी मत्स्यगंधा वासवीय नाम हुए।

एक दिन तीर्थ यात्रा करते हुए पाराशर मुनि आये और खेवट से कहा हमें यमुना पार करो वह भोजन कर रहाथा उसने मत्स्यगंधा से कहा तू पार पहुंचा दे मुनी उसे देख कामातुर हो हाथ पकड़ अपना मनोरथ कहा तब वह बोली आप अतिकुलीन वसिष्ठजीके पुत्र वेदपाठी होकर मछली की गंध के समान स्त्री को देख कामातुर होकर ग्रहण करते हो यह महाअधर्म है तब लज्जित होकर हाथ छोड़ दिये फिर पार पहुंच पकड़ने लगे फिर उसने प्रार्थना की कि आप मुझ दुर्गंधामें कैसी रुचि करते हो, तब मुनीने अपने तपोबल से उसके अंग में ऐसी सुगन्ध कर दी जो चार कोस तक कस्तूरी के समान फैल गई तब उसने कहा कि उस पार से मेरा पिता देख रहा है और दिन में रति करना भी निषेध है इस से रात होने दीजिये यह सुन मुनिने अपने तपोबल से कुहरा उत्पन्न कर दिया और प्रसंग करना चाहा तब उसने कहा मेरा अभी व्याह नहीं हुआ है आप वीर्य्य वान हैं रति के पीछे मैं गर्भवती हो जाऊंगी तो मैं कहां जाऊंगी और पिता से क्या कहूंगी मुनीने कहा कि तुम कन्या ही बनी रहोगी यह सुन उसने कहा कि नहीं महाराज मैं यह चाहती हूं कि मेरे पिता को विदित न हो और आप के समान पुत्र उत्पन्न हो और यह अंग कागंध और नई अवस्था बनी रहे तब मुनिने कहा तुम्हारे विष्णु के अंश से सब पुराणों का कहने हारा पुत्र उत्पन्न होगा जो त्रिलोकी में प्रसिद्ध होगा यह कह उससे सम्भोग कर यमुनामें स्नान करने चले गये सत्यवती गर्भवती हुई समय पर यमुना के द्वीप में पुत्र उत्पन्न किया जो जन्मतेही माता से बोले हम तपस्या करने जाते हैं तुम भी सुख पूर्वक जाओ जब कभी हमको स्मरण करोगी तभी हम आकर तुम्हारी

मनोकामना सिद्ध करेंगे यह कह कर चले गये तब इनका नाम द्वैपायन हुआ इन्हीं ने वेदशाखा निर्मित की तो व्यास नाम हुआ, सर्व पुराण महाभारतादि की रचना की तथा इन्हों ने ही वेदों के विभाग कर अपने शिष्यों को पढ़ाये।

नोट १—एक ओर मनु का यह वचन कि " अहिंसापरमोधर्मः " दूसरी ओर पौराणिकी शिक्षा कि "श्राद्धार्थ मृगमार कर लाओ" हमारे वैष्णवी भाई किसको ग्रहण करेंगे?

२ इन घृणित बातों को बच्चे भी तो कहते और करते लज्जित होंगे क्या यह कोई ऐसी वस्तु है जो भेजी जावे परन्तु इस घृणित और असम्भव बात पर वाद करना ही वृथा है बुद्धिमान् केवल संकेत से ही इसका निर्णय करलेंगे?

३—ब्राह्मण के शाप से स्त्री मछली हो गई और पत्ते में रक्खे हुए ....को खाकर मछली गर्भवती हो गई प्यारे पौराणिकी भाइयो यह व्यास महात्मा की उत्पत्ति और महर्षि पाराशर की करतूत है क्या यह सब बातें ऋषिनिन्दक नहीं हैं इस लिये इन पुराणों को व्यासकृत न कहिये।

राजा शान्तनु का सन्तान उत्पन्न करना।

देवीभागवत स्कन्द २ अ० ५॥

शान्तनु नाम राजा एक दिन शिकार खेलते हुए यमुना के तीर पर गये वहां कस्तूरी मालती के समान सुगन्ध आई राजा जिसको सूंघ चौकन्ने हो नदी की ओर गये तो वहां जाकर देखा कि नदी के तट पर एक स्त्री शृंगार रहित मलीन वस्त्र धारण किये बैठी है और उसीके शरीर से गंध आरह है रा ने इसका रूप यौवन देख कामवश हो गंगा का स्मरण कर उससे पूछा कि तुम किसकी कन्या हो, विवाह होगया है या अभी नहीं, तुमको देख हमारा चित्त चाहता है कि तुम हमको अपना पति बनाओ क्योंकि हमारी स्त्री हमको छोड़ कर चली गई है दूसरी अभी नहीं की है मैं तुम्हारा दास हूं तब वह स्त्री बोली कि मैं दासकी कन्या हूं मेरा पिता घर गया है मैं नौका चलाती हूं यदि आपकी ऐसी इच्छा हो तो मेरे पिता से कहिये। वे आपको दे देंगे तो मैं आनन्द से

आपकी दासी होने को उद्यत हूं भाग ने पिता के समीप आकर कहा कि हे निषाद ! तुम हमको अपनी पुत्री दे दो मैं पटरानी बनाऊंगा तब निषादने कहा कि मैं पुत्री आपको इस प्रण पर देनेको उद्यत हूं कि आपके पीछे मेरी पुत्रीका पुत्र ही राजा हो। राजा इसको सुन गृह पर आ उदास रहने लगा, जिसका वृत्तान्त जब भीष्म महाराज को (जो गंगाके पुत्र थे) ज्ञात हुआ उन्होंने पिता की इच्छा पूर्ण करने के अर्थ आजन्म जितेन्द्रिय रहनेका व्रत धारण कर दासे आकर निवेदन किया उसने पुत्री राजा शान्तनु को दे दी॥

नोट—इस केवट जातिकी कन्याको प्रथम तो पाराशरने भोगा फिर उसीसे शांतनु ने विवाह किया पक्षपात को छोड़ सत्यपूर्वक विचारो तो केवल वर्णोंसे जाति के मानने वाले पौराणिकी भाई व्यास मुनिकी उत्पत्ति पर ध्यान दें और उनके आरपिता पाराशर की करतूत को विचारें ?

श्री पं० जी ने कहा कि सेठजी समय बहुत होगया है इसलिये बसकीजिये।

आर्य्य सेठ—बहुत अच्छा सब महाशयों ने चलने की तैयारी की।

सेठजी—ने पण्डित जी तथा सब महाशयों को नमस्ते की।

पं० जी—ने आयुष्मान् कहा और अन्य सबों ने यथा योग्य की और प्रस्थान किया, सेठजी विश्राम करने लगे।

इति सप्तदश परिच्छेद।

—(०)—

अथ अष्टादश परिच्छेद।

सेठजी—ने श्रीमान् पं० जी को आते देख नम्रतापूर्वक नमस्ते कर कहा

पं० जी—नेआयुष्मान् कहा और विराजमान हुये, थोड़ी देर के बाद सब महाशय भी आगये और यथायोग्य कह और विराजमान हुये।

सेठजी—पं० जी महाराज आज मैं और दिनों से रोचक ही नहीं किन्तु अनोखी कथायेंसुनाता हूं।देखिये:—

—(०)—

वनिता से अरुण और गरुणका उत्पन्न होना

महाभारत आदिपर्व अध्याय २१ ।

प्रजापति कश्यप जी ने पुत्रकी इच्छा से यज्ञ किया उस समय देवता, ऋषियों और गन्धर्वों ने भी उनकी सहायता की, कश्यपजी ने यज्ञकी लकड़ी लाने के लिये इन्द्र और बालखिल्या मुनि और अन्य देवोंकाभेजा इन्द्रादि देवता अपनी शक्तिके अनुसार पर्वतके समान लकड़ी का बोझा लेकर बिना कष्ट आने लगे परन्तु सब ऋषि लोग मिलकर भी एक छोटी सी लकड़ी को अतिकष्ट से ले जाने लगे इन्द्रजी उन ऋषियों को देख अचम्भा मानके उनकी हंसी करते हुए लांघकर वेगसे चलेगये जिससे बड़े २ ऋषियों ने अतिदुखी और क्रोधयुक्त होकर इन्द्रके भयदायी एक महान् कार्य्यका अनुष्ठान किया अर्थात् वे व्रतशील ऋषिगण अपने तपोबल से इन्द्रसे सैंकड़ों गुण शूरता और वीरता में एक इन्द्र और उत्पन्न करनेके लिये बड़े २ मन्त्रों से अग्निमें आहुति चढ़ाने लगे,जिसको सुन इन्द्रने बहुत दुःखी हो फिर कश्यपजी की शरण ली ॥

कश्यपजी बालखिल्या आदि मुनियोंके समीप गये और पूछा कि क्या आप लोगों का कार्य्य सिद्ध होगया उन्होंने कहा कि हां हुआ है तब कश्यपजी ने कहा कि ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन्होंने इन्द्र का पद पाया है आप लोग दूसरे इन्द्रकी चेष्टा कर रहे हैं इसलिये आपको ब्रह्माकी बात झूंठी न करनी चाहिये और मैं आपके संकल्प को भी मिथ्या नहीं बनाना चाहता आप जिसको इन्द्र बनाना चाहते हैं वह महाबली वीर्य्यशाली पुरुष पक्षियोंका इन्द्र होवे यही देवराज इन्द्र आपसे प्रार्थना कर रहे हैं आप इन पर प्रसन्न होवें तब उन मुनि-योंने कश्यपजी से कहा कि हम सबोंने इन्द्रकी उत्पत्तिके निमित्त और आपकी सन्तानके उपजाने के हेतु इस यज्ञका आरम्भ किया है सो हमारे कर्मफलको लेकर जो कुछ अच्छा जान पड़े वही कीजिये । इसी काल में यशस्विनी दक्षपुत्री वनिता ऋतुस्नानपूर्वक व्रत करके शुचि होकर पुत्रकी कामना से पतिके पास गई । कश्यपजी ने उनसे कहा देवि ! तुम जो चाहती हो वह पूरा होगा मेरे संकल्प और बालखिल्या मुनिके तपोबल से तुम्हारे गर्भ से बड़े भाग्यवान तीनों भुवन में प्रधान दो पुत्र उत्पन्न होंगे त्रिलोक में पूजे जावेंगे । भगवान् कश्यपजी फिर वनिता से बोले प्यारी ! तुम अप्रमत्त होकर अपने सुन्दर

गर्भको धारण किये रहना क्योंकि यह लोकोंमें माननीय महावीर कामरूपी दोनों पक्षी सम्पूर्ण पक्षियों पर अधिकार फैलायेंगे। अनन्तर कश्यप प्रजापति हृदय से देवराज से बोले कि हे पुरन्दर! तुम्हारी सहायता करने वाले दो पुत्र उपजेंगे तुम सदा इन्द्र बने रहोगे तुम कभी ब्रह्मज्ञानी, ब्राह्मणों का अपमान न करना यह सुन इन्द्र स्वर्ग को चले गये। समय आने पर वनिताने अरुण और गरुड़ यह दो सन्तानें प्रसव कीं जिनमें अरुण विकलांग होकर सूर्य्यके सारथी बने और गरुड़ पक्षियों के इन्द्रपद पर बैठे॥

नोट—श्री पण्डित जी देखिये यहां वनिता नाम की स्त्री के गर्भसे दो पक्षी उत्पन्न होगये। इस सिद्धाँत ने मिस्टर डारविन साहिबको भी जो यह लिखते हैं कि पशुपक्षियों से क्रमशः मनुष्योत्पत्ति होगई मात कर दिया क्योंकि यहां तो डाइरेक्ट स्त्री के गर्भसे पक्षी उत्पन्न कर दिये इसीसे तो हम कहते हैं कि आप इन प्रमाणों पर विचार करें?

कचका अद्भुत दृश्य।

महाभा० आदि० अ० ६ जब देवताओं और राक्षसों में संग्राम हुआ तब देवोंने अंगिरा के पुत्र बृहस्पति और असुरोंने शुक्रको पुरोहित किया, देवता युद्ध में जितने दानवों को मारते शुक्राचार्यजी संजीवनी विद्या से उनको जीवित करदेते थे परन्तु बृहस्पति को यह विद्या नहीं आती थी इस से देवगण अत्यन्त दुखी होते थे तब देवों ने बृहस्पति के बड़े पुत्र कच के निकट जाकर कहा कि हम आपकी शरण हैं अब बचाओ, सहायता करो अर्थात् तेजस्वी शुक्र में जो विद्या है उसको जाकर सीखआओ हमको यज्ञांश देंगे तुम्हीं उनकी पुत्री देवयानीकी उपासना कर सकोगे और वह भी तुम्हारे आचार विचार से संतुष्ट हुये तो तुम संजीवनी विद्या को अवश्य ही प्राप्त होगे यह सुन कच ने शुक्रजी के पास आकर कहा कि मैं अंगिरा का पौत्र और बृहस्पति का पुत्र, हूं और मेरा नाम कच है आप मुझ को शिष्य बनाइये मैं सहस्रों वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य धारण करूंगा आपआज्ञा कीजिये शुक्र बोले तुम्हारा कल्याण होवे तुम्हारी बात मानली, वह वहां रह कर कार्य्य करने लगे इस बीच में देवयानी कच से और कच देवयानी से भी प्रसन्न रहते तब ब्रतानुष्ठान करते २ पांच सौ वर्ष व्यतीत होगये तब एक दिन कच निर्जन बन में गौकी रखवाला कर रहे थे दैत्योंने यह जान कर कि यह कच है और संजीवनी विद्या के अर्थ आये हैं क्रोध कर मार डाला और उसको टुकड़े २ कर स्यार और कुत्तों को दे दिया।

हत्वा शालावृकेभ्यश्च प्रायच्छल्लवशः कृतम् ॥३९॥

इतने में गौयें घर पर आईं और कच नहीं आये तब थोड़ीदेर देख कर देवयानीने अपने पिता शुक्र से कहा कि सूर्य छिप गये हैं गौ घर आगईं परन्तु कच नहीं आये पिताजी मुझ को निश्चय जान पड़ता है कि कच मारे गये सत्य कहती हूं बिना कचके नहीं जी सकती शुक्र बोले कच चले आओ तुम मरे हो मैं तुमको जिलाता हूं यह कहकर मृतक संजीवनी विद्या पढ़ कर कचको बुलाया कच बुलाये जाते ही स्यार कुत्तोंके शरीर को फाड़ और निकल कर आपहुंचे और संजीवनी विद्या का प्रभाव देख कर प्रसन्न हुए देवयानी ने उनसे पूछा कि इतनी देर क्यों हुई उसने कहा मेरी गौ एक वृक्ष की छाया में थी असुरों ने देख मुझसे पूछा कि तुम कौन हो मैंने कहा कि मैं कच हूं दानवों ने मार कर मेरे टुकड़े २ कर स्यार कुत्तों को खिलादिये।

अनन्तर देवयानी की आज्ञानुसार कच फूल बटोरने के लिये किसी वनको गया दानवोंने फिर भी उसको देख।

वनं ययौ कचोविप्रो ददृशुर्दानवाश्चते।
पुनस्तं पेषयित्वा तु समुद्राम्भस्यमिश्रयन् ॥ ४० ॥

पीसकर समुद्रके जलमें घोल दिया अनन्तर देवयानीने उनको देर तक न आते देखकर पिताको यह समाचार सुनाया इससे फिर शुक्र विद्या के बलसे बुलाये गये उन्होंने वह सब हाल कह सुनाया इस के पीछे तीसरी बार उनको वैसेही देख कर जलाकर चूर२ कर मदिरासे मिलाकर उन शुक्रही को देदिया आगे देवयानी ने फिर पिताने कहा कि मैने कचको फूल बटोरने के लिये भेजा था अब भी आते नहीं दीखते मुझको निश्चय जान पड़ता है कि वह मरे या मारे गये मैं निश्चय कहती हूं उस कचके बिना मैं न जीऊंगी। शुक्र बोले बेटी बृहस्पति का पुत्र कच मारा गया विद्याके बलसे जिलाता हूं तिस पर भी असुर लोग मार डालते हैं देवयानी तुम शोक न करना उसको जीवित रखना मेरा असाध्य होगया है तब देवयानीने कहा कि मैं बिना भोजनों के रहूंगी क्योंकि उनका स्वरूप मुझे बड़ा प्रिय था तब शुक्र दैत्यों पर अप्रसन्न हुए और संजीवनी विद्या से कचको बुलाया कचने गुरु के पेटमें रहकर गुरुहत्याके भयसे भयभीत होकर धीरे २ उत्तर दिया तब शुक्रने कहा तुम कौन पथसे मेरे पेटमें आ घुसे हो कच बोले कि हे गुरु! आपकी कृपा से मेरी स्मरण शक्ति लुप्त नहीं हुई जो जिस प्रकार से हुआ वह सब स्मरण है इसलिये कि कहीं हमको गुरुके पेट फाड़ने के लिये पाप की कीचड़ में डूबना न पड़े इसलिये पेट में बड़े ही

अपारकष्ट सहरहा हूं असुर ने मुझको मार जलाय और चूर २ कर मदिरा में घोल कर आपको देदिया था पर हे पूज्य ! आपके रहते आसुरिक माया क्योंकर ब्राह्मणिकमाया से बढ़ सकेगी तब शुक्र ने देवयानी से कहा बेटी देवयानि ! इस समय तुम्हारा प्रियानुष्ठान करूं मेरे नाश होने से कच जी सकता है क्यों कि कच मेरे पेट के भीतर हैं मेरे बिना पेट फाड़े नहीं निकल सकेगा देवयानी बोली कच का नाश और आप की मृत्यु यह अग्निवत् दोनों शोक ही मुझको जलाने लगे हैं कच के नाश होने से मेरा जीवन न रहेगा आपको कोई हानि पहुंचने से भी जी नहीं सकती, तब शुक्र ने कच से कहा कि हे बृहस्पति पुत्र कच! देवयानी के प्रेमी हो देवयानी भी तुम को भज रही है ऐसी दशा में यदि तुम कचस्वरूप इन्द्र न हो तो आज सञ्जीवनी विद्या तुम को देता हूं ब्राह्मण के बिना दूसरा जन मेरे पेट में घुस के फिरजीवन पाकर नहीं निकल सकता सो तुम यह विद्या लो मैं तुम को जीवन देता हूं बेटा मेरी देह से निकल कर पुत्र रूपी हो कर मुझ को जिलाना, गुरु से विद्यालाभ करके विद्यावान होकर धर्म्म पथ पर दृष्टि रखना अकृतघ्न होना कच ने गुरु से संजीवनी विद्या लाभ कर जिस प्रकार पूर्णमासी के दिनसूर्य्य के अस्त होने पर पूर्ण चन्द्रमा प्रकट होता है उसी भांति शुक्र की कोख को फाड़ कर उसी क्षण साक्षात् निकल आये ।

गुरोः सकाशात् समवाप्य विद्याम्।
भित्वा कुक्षिं निर्विचक्रामविप्रः॥ ।५६।

अनन्तर ब्रह्मर्षि शुक्राचार्यजीको मरे और गिरे हुए देख कर संजीवनी विद्या से उसको जिलाय और उठा कर के उस सिद्ध संजीवनी विद्या को प्राप्त कर गुरु को भक्ति से प्रणाम कर अपने घर को आये, यही कथा मत्स्यपुराण अ० २५ में भी लिखी है ।

नोट—पं० जी उपरोक्त कथा पर आप विचार करें क्या आप की सम्मति में यह होना सम्भव है इस के अतिरिक्त शुक्राचार्य्य राक्षसों के पुरोहित थे तो क्या वह नर मांस के खाने वाले भी थे क्या कि जब राक्षसों ने कच को चूरण कर और तीसरी बार उसके शरीर को जला मदिरा में मिला गुरु शुक्राचार्य्य को पिला दिया, उस समय उनको मनुष्य शक्ति को गंध भी नहीं आई ? पेट बोलना कोख फाड़ कर निकलना इन असम्भवबातों का क्या ठीक यदि मान भी लिया जावे कि ऐसी संजीवनी विद्या शुक्राचार्य्य के पास थी तो महाभारत में मृतक देवासुरों को क्यों नहीं जीवित कर दिया हमारी सम्मति में वर्त्तमान सनातन-धर्मी इस गुप्त संजीवनी विद्या की खोज कर मृत पितरों को जीवित करलें तो बड़ा ही उपकार हो ।

वृद्धावस्था के बदले युवावस्था।

महाभारत आदि पर्व अ०८४।

राजा नहुष के पुत्र ययाति सम्राट् हुए जिन्होंने पृथिवी का पालन कर अनेक यज्ञ किये जिनके देवयानी के गर्भसे यदु और तुर्वासा, शर्मिष्ठाके गर्भ द्रुह्यु अनु और पुरु उत्पन्न हुए। राजा बहुत काल तक राज्य करते रहे अन्तको कठोर जरासे पकड़े गये तब राजाने यदु, पुरु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु इन पांचों पुत्रोंको बुलाकर कहा कि मैं युवापन प्राप्त कर मनमाना भोग करना चाहता हूं, तुम मेरा बुढ़ापा लेलो तो मैं तुम्हारे यौवन से बहुत काल तक सुख भोगूं मैं दीर्घयज्ञ में दीक्षित था उस कालमें मुनि शुक्राचार्य्य के शापसे जराग्रस्त हुआ हूं इसलिये मैं संतापित हो रहा हूं परन्तु किसीने भी स्वीकार न किया तब छोटे पुत्र सत्यविक्रमी पुरुने कहा कि आप मेरे यौवनको ले नये शरीर में विराजिये मैं आपकी आज्ञासे जरा लेकर राज्यशासन करता हूं यह सुन राजाने तप और वीर्य्यके बलसे उस महात्मा पुत्रमें बुढ़ापा प्रविष्ट कराया राजा अपने पुत्र पुरुका यौवन पा युवा बने और पुरु ययातिकी वृद्धावस्था लेकर राज्यशासन करने लगे॥

एवमुक्तोययातिस्तुस्मृत्वा काव्यंमहातपाः।
संक्रामयामासजरांतदापूरौ महात्मनि ॥ ३४ ॥

जब राजाको इस नये शरीर में दो पत्नियों से आनन्द करते हुए सहस्र वर्ष व्यतीत होगये और भोगोंसे तृप्त न हुए तब बुद्धिसे यह विचार कर कि आगमें घृत छोड़ने से जिस प्रकार अग्नि बढ़ती है उसी प्रकार कामोत्पादक वस्तुओं के देखनेसे काम बढ़ता ही है इसी तरह अनेक प्रकार से मनको समझा-कर अपने पुत्रको यौवन दे बुढ़ापा ले लिया।

नोट—कहिये पंडितजी! आपकी बुद्धिमें यह आता है कि पिताने बुढ़ापा दे पुत्रका यौवन ले लिया हो? यदि ऐसा उस समय सम्भव था तो फिर क्या कर्मों का फल हो जाना था? पं० जी! पुराणोंके लेखोंको कभी आपने विचारा ही नहीं। इनका परस्पर मिलान महर्षि स्वामी दयानन्दजीने ही किया तिस पर भी आप सब अप्रसन्न होते हैं॥

—(०)—

सौ पुत्रों की अद्भुत उत्पत्ति ।

म० भा० आ० अ० ११५

एक समय भगवान् द्वैपायन भूख और थकावट से कातर होकर गांधारी के पास आये गांधारी ने उनको सन्तुष्ट किया जिससे व्यास ने गांधारी की प्रार्थना के अनुसार यह वर दिया कि तुम्हारे पति समान वीर्य्यवान सौ पुत्र उत्पन्न होंगे यथा समय गांधारी गर्भवती हुई गर्भ स्थिति के पीछे दो वर्ष बीत गये पर सन्तान नहीं हुई इस से वह बड़ी दुखी होने लगी आगे यह सुनकर कुन्ती के सूर्य्य के समान पुत्र उत्पन्न हुए हैं अपने गर्भ को स्थिर देख चिन्ता और अति मानसिकपीड़ा से व्याकुल होकर धृतराष्ट्र से छिपकर यत्न पूर्वक अपने पेट में आघात किया उससे दो वर्ष का वह गर्भ कटी हुई लोहे की गेंद के समान मांस पेशी स्वरूप में भूमि पर गिरा त्यों ही व्यास जी यह जान वहां पहुंचे और उसको देख कर कहा कि तुमने यह क्या किया है गांधारी ने कहा कि कुन्ती के सूर्य्य के समान पुत्र उत्पन्न हुए सुनकर अति दुःख से मैंने पेट में चोट मारी आपने पहिले मुझको वर दिया था कि सौ पुत्र उत्पन्न होंगे अब सौ पुत्रोंके बदले मांस पेशी पैदा हुई है तब व्यास जी ने कहा कि जो कहा सो ही होगा घृत से सौ घड़े भरकर अलग २ यत्न से रक्खो और ठण्डे जल से इस मांस पेशी को न्हिलाओ अन्दर इस के न्हिलाते २ मांस पेशी बहुत हिस्सों में बट गई और प्रत्येक भाग अंगूठे के पोरे के समान हुआ अनन्तर वह सब मांस पेशी घृत भरे घड़ों में रक्षित होकर अच्छे गुप्तस्थान में भली भांति रक्खी जाने लगीं।

स्वनुगुप्तेषुदेशेषु रक्षा वैव्यदधात्ततः ॥ २१ ॥

व्यासजीने कहा कि दो वर्ष के पीछे यह सब घड़े खोलना यह कह तप के लिये चले गये फिर योग्य काल में उन टुकड़ों से पहले राजा दुर्योधनका जन्म हुआ और एक महीने के अन्तर धृतराष्ट्र के सौ पुत्र और कन्याने जन्म लिया।

नोट—पं०जी इस पर आप स्वयं विचार करें ?

—(०)—

कृपा कृपी की विचित्र उत्पत्ति ।

एक समय गौतममुनि तपस्या में दृढ़ता से लग रहे थे तब देवराजने जानपदीनाम्नी देवबाला को भेजा वह उनके आश्रम पर पहुंच उनको लुभाने लगी गौतमने उस परमसुन्दरी को देखा तो उनके नेत्रों में प्रफुल्लता छागई और उनके हाथों से धनुषबाण धरती पर गिर पड़ा देह कांपने लगी तो भी उत्तम ज्ञान और तपस्या में दृढ़ प्रतिज्ञा रहने से वह उत्तम धीरज धरे रहे परन्तु उसके देखने मात्रके विकार ही से उनका वीर्य्य गिर गया था पर वह उस बातको नहीं जान सके अनन्तर वह धनुषबाण कृष्णसार मृगका चर्म और वन आश्रम और अप्सराको तजकर अन्य स्थान में चलेगये, उनका वीर्य्य एक सरकण्डे की लकड़ी पर गिरा उसके दो भाग होगये और उससे एक पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ ॥ आदिपर्व अ० १३० ॥

जगामरे तस्तस्तत्तस्य शरस्तम्वेपपातच ।१२ ।
शरस्तम्बे च पतितं द्विधातदभवन्नृप !
तस्याथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्यशरद्वतः । १३ ।

अनन्तर मृगयाके लिये मन माने घूमने वाले महाराज शान्तनु के एक सैनिकने वनमें उस पुत्र और कन्याको देखा । धनुर्बाण और मृगकाचर्म देख कर उसने समझा कि यह दोनो धनुर्वेद में दक्ष किसी ब्राह्मण को सन्तान हैं तब उस सैनिक ने धनुर्बाण और दोनों बच्चों को लेजाकर नरनाथ को दिखलाया उन्होंने यह कहकर कि यह मेरी सन्तान हैं ले लिया और उनके सब संस्कार किये चूंकि राजाने कृपापूर्वक उनको पाला था इसलिये उनका कृपा और कृपी नाम रक्खा ॥

नोट—यह कथा उससे भी अद्भुत है वहां तो रसौली को घड़े में रखने से पुत्रोत्पत्ति हुई परन्तु यहां सरकण्डे के ऊपर...गिरने से पुत्र और कन्याकी उत्पत्ति होगई । प्यारे पं० जी ! कुछ तो विचारिये मूर्खसे मूर्ख किसान भी इस बात को जान सकता है कि अंकुरोत्पत्ति जबही होती है जब कि पृथ्वी और बीज रीत्यनुसार मिलते हैं न कि विपरीत रीतिसे ?

हरिणी के गर्भ से कृष्यशृंग का जन्म

वनपर्व अ० ११०

कश्यपमुनि एक तड़ागके निकट तपस्या करते थे बहुत काल बीतने पर एक दिन जलमें स्नान करते समय उर्वशी अप्सरा को देखते ही उनका वीर्य्य स्खलित होगया उस वीर्य्यको एक हरिणी पीगई वह बहुत प्यासी थी इसलिये गर्भिणी होगई वह पहिले जन्मकी देवकन्या थी जो ब्रह्मा के शाप से हरिणी बनी थी और ब्रह्माने उससे यह भी कह दिया था कि जब तेरे गर्भसे मुनिका जन्म होगा तब ही तू इस योनि से छूटेगी ब्रह्माका ऐसा वचन अमोघ होने के कारण उस हरिणी के गर्भसे महामुनि शृंगीऋषि का जन्म हुआ।

तस्यां मृग्यां समभवत्तस्यपुत्रो महानृषिः।
ऋष्यशृंगस्तपोनित्यो वनएवाभ्यवर्त्तत ।३५।

जो तप करने के कारण सदा वन ही में रहने लगे।

तस्यर्षेः शृङ्गशिरसिराजन्नासीन्महात्मनः । ३६ ।

हे राजन् ! महात्मा शृंगीऋषिके सिर पर दो सींग थे इसलिये उनका यह नाम हुआ।

पण्डितजी ! और लीजिये हरिणी से मनुष्य की उत्पत्ति होने लगी अब क्या अब तो जिससे चाहे मनुष्य उत्पन्न कर लीजिये।

—(०)—

युवनाश्वकी कोखसे सन्तानोत्पत्ति

वनपर्व अ० १२६

इक्ष्वाकुवंश में युवनाश्व नामक एक राजा हुए जिन्होंने अनेक यज्ञ किये थे परन्तु कोई पुत्र न था। राजाने अपना राज्यमंत्रियों को दे आप योगाभ्यास को चले गये। एक दिन भूख प्यास से व्याकुल हो भृगु आश्रम में पहुंचे

उसी रात्रि में भृगुने सौद्युम्न राजा के वासते पुत्रेष्टियज्ञ कराया था राजा युवनाश्व सौद्युम्न से पहिले उस आश्रम में पहुंचा जहां मंत्र से पवित्र किये हुए कलश में जल भरा रक्खा था ऋषि लोग थक कर सब सोगये थे राजाने आकर उसी समय ऋषियों से जाकर जल मांगा परन्तु सूखे कण्ठ का कोमल शब्द ऋषियों ने न सुना तब राजाने कलश के पास जाकर जल पी लिया और बहुत शान्त हुआ अब ऋषि उठे तो उन्होंने कलश को जलसे खाली देखा और सब लोगों से पूंछा कि यह किसका निन्दितकर्म है राजा युवनाश्व ने कहा कि यह मेरा कर्म है तब भृगु ने कहा कि यह कर्म तुम ने अच्छा नहीं किया यह जल पुत्र के वास्ते मंत्रों से शुद्ध किया गया था मैंने तप करके पुत्र के वास्ते वह जल रक्खा था। इसलिये तुम्हारे अतुल पराक्रमी पुत्र होगा जो अपने बलसे इन्द्र को भी परास्त करेगा और गर्भाधान का दुःख भी तुम को प्राप्त न होगा तब सौ वर्ष पूरे होनेके पश्चात् महात्मा राजा युवनाश्व की बांई कोख फटी और सूर्य्य के समान एक पुत्र उत्पन्न हुआ परन्तु राजा यवनाश्व मरे नहीं एक अद्भुत कर्म हुआ।

वामपार्श्वं विनिर्भिद्य सुतः सूर्य इवस्थितः।
निश्चक्राम महातेजा न च तं मृत्युराविशत्। २७।

तब महातेजस्वी इन्द्र उस पुत्रको देखने के वास्ते आये इन्द्रसे देवताओं ने कहा कि कौन पालेगा उसने अपनी कुनअंगुली उस बालक के मुखमें दे दी और कहा कि मैं इसको पालूंगा तबही इन्द्रादि देवताओं ने उस बालकका नाम मानधाता रक्खा इन्द्रकी कुनअंगुलीको पीकर वह बालक बढ़ने लगा।

पंडितजी! अभी तक मथने अथवा मनुष्य वीर्य्य से अद्भुत २ उत्पत्ति आपको सुनाई अब आपने मंत्रोंसे पढ़े जलके पीनेसे राजाकी कोखसे पुत्र उत्पत्ति सुनी अब और क्या सुनावें। राजाके दूधके स्थान नहीं उसके लिये इन्द्रकी अंगुलीने काम दिया। सामान्यरीतिसे सन्तान १० व ११ व १२ महीनेमें उत्पन्न होती है परन्तु राजाके पेट में १०० वर्ष गर्भ रहा देखिये श्रीमान् यह पुराणों के चमत्कार हैं?

—(०)—

चर्बीके यज्ञकी गंधसे पुत्रोत्पत्ति।

वनपर्व अ० १२७

सोमक नाम राजा था उसके १ स्वरूपवती स्त्री थी जिसने पुत्र उत्पन्न

करने के लिये बड़े यत्न किये पर कोई पुत्र न हुआ जब राजा बड़ा हुआ तब जन्तु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ माताओंने इसको लेकर पिछवाड़े फेंकदिया जब उस जन्तुको चींटियोंने काटा तो उसने भयानक शब्द किया तब सब माताओंने अद्भुत दुःखी होकर जन्तुको रोनेसे रोका परन्तु वह न रुका और उसके रोनेके शब्दको राजाने सुन मंत्रियों समेत उठकर पिछवाड़े गया वहांसे पुत्रको लेकर रणवास में आया और कहा कि एक पुत्रवालेको सदा सन्देह रहता है इसलिये उसको धिक्कार है एक पुत्रका होना अच्छा नहीं मैंने पुत्रकी इच्छा से सौ स्त्रियां कीं उसमें से किसी एक के केवल यही जन्तु नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ है सो भी उत्तम नहीं इससे अधिक और मुझको क्या दुःख होगा इसके उपरान्त मेरी और मेरी स्त्रियोंकी अवस्था व्यतीत होगई इसलिये हम सबके प्राण इसीमें धरे रहते हैं यदि कोई ऐसा उपाय कठिन भी हो जिससे सौ पुत्र उत्पन्न होजावें तो भी मैं करूंगा। ऋत्विक्ने कहा ऐसा कर्म है परन्तु आप जब कर सकें तब राजाने कहा चाहे मेरे करने योग्य हो चाहे अयोग्य तो भी मैं सौ पुत्रों की चाहनाके लिये करने को उद्यत हूं ऋत्विक्ने कहा कि आप जन्तुसे यज्ञ कीजिये तो आपके सौ पुत्र होंगे जब चर्बीका होम किया जायगा तब उसके धुएंको सूंघके तुम्हारी सब स्त्रियोंके पुत्र ही उत्पन्न होंगे तथा उसी स्त्रीके जिसका यह अब पुत्र है उसीके फिर उत्पन्न होगा और उसीकी कोख में सोनेका एक चिह्न रहेगा ॥ पुनः—

तस्यामेव तु तेजस्तुर्भविता पुनरात्मजः ।
उत्तरे चास्य सौवर्णं लक्ष्मपार्श्वे भविष्यति ॥२१॥

राजाने पुत्रकी इच्छा से सौमिक यज्ञ आरम्भ कर जन्तु को मारना चाहा तब उसकी माताने हाहाकार मचाया तो भी ऋत्विक्ने बलसे उसको छीन उसकी चर्बी से हवन किया स्त्रियों के गर्भ रहा ।अ०१२८॥

सर्वाश्च गर्भानलभंस्ततस्ताः परमाङ्गनाः ।६॥

दशवें महीने में राजा सोमकके एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें जन्तु सब से बड़ा हुआ सब माताओंको जैसा जन्तु प्यारा था वैसा कोई पुत्र नहीं उसकी कोखमें सुवर्णका चिन्ह भी था और वही सबमें अधिक गुणवान था।

नोट—श्री ०पं०जो कहां तो वेदों की यह आज्ञा कि "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्०" अन्यत्र इसी के अनुयायी महर्षिगणों का यह

उपदेश है कि " अहिंसा परमोधर्मः " और कहां यज्ञ जैसे पवित्र कर्म्ममें यह घोरहत्या तथा बालककी चर्बी का हवन !.

सज्जनो विचारो तो सही कि वास्तविक आपके पुरुषा ऐसे ही निर्दयी एवं अपवित्र कर्म्मों के कर्त्ता थे यदि नहीं तो इस दुराग्रहको आप क्यों नहीं छोड़कर एक मुख हो कह देते हो कि यह वाममार्गियों की कपोल कल्पना है न कि ऋषि मुनियों की पदार्थविज्ञानी एवं भिषग्वर इस बात पर विचार करें कि चर्बी के जलाने से क्या गर्भस्थिति हो सकती है ऐसी ही बातों ने तो सनतान-धर्म्मके गौरव इतर देशनिवासियों की दृष्टि में घटा दिया परन्तु शोक है कि फिर भी सनातनी भाई एक स्वर होकर यह नहीं कहते कि यह पुराण व्यास ऋषि-कृत नहीं हैं।

अष्टावक्र का गर्भ के भीतर बोलना और पिता के शाप से आठ जगह टेढ़ा होना ।

वनप-अर्व० १३।

उद्दालक नाम ऋषिके कहोड़ नामी एक शिष्य थे वह गुरुकी बहुत सेवा करते थे और उनके ही घर में रहते थे इस कारण बहुत दिन पढ़ते रहे अब उद्दालकने कहोड़को अपना भक्त जाना तो अपनी पुत्री का विवाह कहोड़के साथ कर दिया तदनन्तर कहोड़की स्त्री को गर्भ रहा एक दिन उस बालकने गर्भ ही में से अपने पिता से कहा कि हे पिता तुम समस्त रात्रि पढ़ते ही रहते हो सो यह कर्म्म उचित नहीं।

सर्वाङ् रात्रि मध्ययन करोषि नेदं—
पितः सम्यगिवोपवर्त्तते ॥१॥

शिष्यों के मध्य में महर्षि कहोड़ने अपनी निन्दा सुन क्रोधित हो कर कहा कि जो तू गर्भ के भीतर ही से बोलता है इस लिये तू आठ जगह से टेढ़ा होगा अन्तमें ऐसा ही हुआ और टेढे होने के कारण उनका नाम अष्टावक्र हुआ।

नोट—पंडित जी श्रीकृष्ण महाराज ने गीतामें कहा है कि " अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् " अर्थात प्राणियों को अपने किये हुए कर्म्मों के अनुसार फल मिलता है जैसा कि बाबा तुलसीदासजीने भी कहा है कि—

कर्म्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस कीन तैस फल चाखा॥

तो बताइये बच्चेने कर्म ही क्या किया यदि कहो कि उसने पेट में से कहा कि सम्पूर्ण रात पढ़ना ठीक नहीं, प्रथम तो गर्भ में बोलना ही ठीक नहीं और यदि बोला और उपरोक्त बात कही तो क्या पाप किया जिस पर पिताने ऐसा शाप दिया कि तू आठ जगह से टेढ़ा होगा महाराज बिना अपराध के ऐसा कठोर दण्ड क्या यही महात्माओंका कार्य्य है।

एक मत्स्य का बढ़ना और प्रलय के समय नावका रोकना

वनपर्व अ० १८७।

सूर्य्य के पुत्र महाप्रतापवान और प्रजापतिके समान तेजस्वी मनु हुए जिन्होंने बदरिका आश्रम में जाकर ऊर्ध्ववाहु तथा एक चरण से खड़े होकर दश सहस्र वर्ष शिखा, शिर और नेत्रोंको स्थिर करके घोरतप किया एक दिन भीगे वस्त्र जटाधारी मनुके पास जाकर एक मत्स्य बोला कि भगवन् मैं बहुत छोटा हूं इससे मुझको बड़े मत्स्यों से बड़ा डर लगता है आप उनसे हमारी रक्षा करो मैं भी आपको इस प्रकार बदला दूंगा यह सुन दयासे उसको पकड़ लिया फिर उसको एक पात्र में छोड़ दिया और पुत्र के समान उसका पालन करने लगे अब वह बहुत बड़ा होगया तो वह बोला कि भगवन् मेरे लिये कोई दूसरा स्थान बतलाइये तब उन्होंने उस बरतन से निकालकर बावड़ी में डाल दिया बहुत वर्ष बीतने पर जब वह उसमें भी न समाया तो आठ कोस लम्बी चौड़ी गंगामें डाल दिया जब वह उसमें भी बढ़ने लगा तब मुनिसे कहा कि मैं चल फिर नहीं सकता इसलिये आप प्रसन्न होकर समुद्रमें डाल दीजिये पुनः वह हंसकर बोला कि आपने मेरी बड़ी रक्षाकी है इसलिये मैं कहता हूं कि थोड़े ही कालमें इस सब चर और अचर जगत्की प्रलय होगी यह समय सब लोगों के नष्ट होने का आया है इसलिये हम आपको हितकी बात सुनाते हैं कि आप एक नाव बनाइये और उसमें दृढ़ रस्सी बांधिये जब प्रलयका समय आवेगा तब आप सप्त ऋषियोंके सहित उसी नावमें चढ़ियेगा और उसी नावमें सब जगत्के वस्तुओंके बीजोंको रक्षापूर्वक क्रमसे रख लीजियेगा। हे मुनिजन! आप उस नावमें बैठ हमारा मार्ग देखना तब हम आवेंगे आप हमारे सिर पर सींग देखकर हमको पहचान लेना अब हम जाते हैं आप बिना मेरी सहायताके उस घोर जलको तैर नहीं सकते आप मेरे वचन में शंका मत कीजिये मत्स्य के वचन सुन मनुने कहा कि हम ऐसा ही करेंगे अनन्तर वे दोनों परस्पर आज्ञा

लेकर इच्छानुसार चले गये उसके पश्चात् महाराज मनुने उसके कथनानुसार सब जगत्की वस्तुओं को इकट्ठा किया फिर एक सुन्दर नावमें बैठ कर घोर तरङ्गवाले हिमालय के शिखरसे बांध दिया फिर उस मत्स्यने कहा कि हे ऋषियों मुनिलोग हमको ही प्रजापति कहते हैं हमारा नाम ब्रह्मा है हमने मत्स्य रूप धारण कर इस आपत्ति से आपको छुड़ाया है।

नोट—श्रीमान् ! इस कथाकी और बातों को छोड़ कर प्रलय की ओर आप ध्यान दीजिये कि जब स्थावर जंगमकी प्रलय हुई तो रस्सी, नौका, जड़-वस्तु और सप्त ऋषि मछली शरीरधारी यह किस प्रकार शेष रह सकते हैं यदि रहे तो प्रलय कैसी ? ।

—(०)—

विश्वामित्र का चुराकर कुत्तेका मांसपकाना ।

अनुसाशन अ० ३

वीर्य्यशाली विश्वामित्र ने तपस्या के प्रभावसे महात्मा वसिष्ठके एक सौ पुत्रों का नाश किया था उनके शरीर में क्रोध उत्पन्न होने पर इन्होंने बहुतेरे महा तेजस्वी यातधान राक्षसों को उत्पन्न किया एक सौ ब्रह्मऋषियोंसे युक्त विद्वान् अत्यन्त महान् कुशिकवंश इस मनुष्य लोकमें ब्राह्मणों के द्वारा स्तुतियुक्ति होकर स्थापित हुआ ऋचीके पुत्र महातपस्वी शुनःशेक पशुत्वको प्राप्त होकर महायज्ञ से विमोदित हुए हरिश्चन्द्र ने निजके तेजके सहारे यज्ञमें देवताओंको संतुष्ट कर बुद्धिमान् विश्वामित्र पुत्रत्व लाभ किया देवताओंने विश्वामित्र को देवरात नामक जो पुत्र प्रदान किया उसके ज्येष्ठ तथा राजा होने पर भी उनके अन्य पुत्रों ने उसे प्रणाम नहीं किया इसीसे उन्होंने उन पंचास पुत्रोंको शाप दिया वे सब चांडाल होगये। इक्ष्वाकुका पुत्र त्रिशंकु वसिष्ठके शापसे चांडाल होगया इसीसे उसके बांधवोंने उसे परित्याग किया अनन्तर उसके दक्षिण दिशाको अवलम्बन करके अवाकशिरा होने पर विश्वामित्रने स्वर्ग भेजा।

विश्वामित्रकी कोशकी नामका देवर्षियोंसे सेवित एक बहुत बड़ी नदी थी उस कल्याणी पुण्य सलिलवाली श्रेष्ठ नदीको देवता और ब्रह्मर्षि लोग

सदा सेवा करते थे। पञ्चवलवती उत्तम प्रसिद्धरम्भा नामकी अप्सरा उसकी तपस्या में विघ्न करनेके शापवश से शिला होगई थी।

इसी ऋषिके शापके भयसे पहिले समयमें वशिष्ठ मुनि पत्थरखण्ड के सहित जलमें डूबे थे और विशाप होकर जल से उठे थे तभी से पुण्य सलिल-शाली महानदी महात्मा वशिष्ठके उस ही कर्मसे विपाशा नामसे विख्यात हुई।

विश्वामित्र त्रिशंकुके यज्ञ करने में प्रवृत्त हुये तब वशिष्ठमुनि के पुत्रोंने उन्हें यह कहके शाप दिया कि-जब तुम चांडालके पुरोहित हुये हो तो स्वयं चांडाल हो जाओगे इस ही शापके सत्य होने के निमित्त किसी आपत्तिकाल में विश्वामित्र ने चौर्य्यवृत्ति से कुत्तेका निकृष्ट माँस चुराकर उसे पकानाआरम्भ किया इतने हा समय में इन्द्रने बाज पक्षीका रूप धारणकर उस मांसको हरण किया। इस समय विश्वामित्र ने भगवान् इन्द्र की स्तुति की इन्द्रने प्रसन्न होकर उन्हें शापसे मुक्त कर दिया।

नोट—श्री पं० जी तथा प्यारे सनातनी भाइयों! क्या वास्तव में अब भी ऐसी कथा पढ़कर कि विश्वामित्र ने चुराकर खाने के लिये कुत्तेका मांस पकाया यही कहते रहोगे कि यह व्यास प्रणीत है? कारण कि जंगली जातको छोड़ जिनको कि आप म्लेच्छ कहते हैं वह भी तो चाहे जैसी आपत्ति क्यों न हो कुत्तेका मांस खाना,स्वीकार न करेंगे न कि आप के ऋषि विश्वामित्र ऐसे घृणितकार्य्य करनेके लिये बद्धपरिकर हुये। शोक!!! (१:) यह बात हमको भी स्पष्टतया प्रकट करती है कि कर्म से ही जाति होती है न कि केवल जन्म से? क्योंकि त्रिशंकु चांडाल के पुरोहित बनने के लिये विश्वामित्र भी चांडाल होगये और फिर उसी जन्म में, इन्द्र ने उन्हें फिर शुद्ध कर दिया अब यदि आर्य्यसमाज अपने वियोगी भाइयोंको प्रायश्चित कर शुद्ध करता है तो क्या हमारे सनातनी भाइयों का यह धर्म है कि उससे द्रोह वा उसके कार्य्य में विघ्न डालें किन्तु ऐसे उदाहरणों को देख उनको चाहिये कि इस शुद्ध कार्य्य में सहायक बन वेदोक्तधर्म के अनुयायी बनें॥

राजा भंगास्वन का एक जलाशय में स्नान करके स्त्री होना फिर तपस्या करके उसके सौ पुत्रों का होना।

अनुशा० अ० १२॥

प्राचीन कालमें भंगास्वन नाम एक धार्मिक राजा था उससे और इन्द्र

से शत्रुता होगई एक समय राजा मृगया को गया तब इन्द्रने वही समय उत्तम समझकर उसे मोहित करना आरम्भ किया राजा इन्द्रके द्वारा मोहित होकर अकेला ही घोड़े पर सवार हो भ्रमण को जाते हुये वहां भूख प्याससे पीड़ित होकर दिशा भूल गया तब इधर उधर फिरकर घोड़ा एक वृक्ष से बांध दिया और फिर जलमें स्वयम् स्नान करने लगा स्नान करते ही राजा स्त्री होगया।

अथ पीतोदकं सोऽश्वं वृक्षे बद्धा नृपोत्तमः।
अवगाह्य ततस्तात तत्र स्त्रीत्वमुपगतः ॥ १० ॥

राजा अपने स्त्रीरूप को देखकर बहुत व्याकुल हुआ कि क्यों कर नगर को जाऊं और अपने एक सौ पुत्रोंका सुख कैसे भोगूंगा न जाने मैं क्योंकर स्त्रीत्व को प्राप्त हुआ इस भांति नाना प्रकार के सोच विचार कर अंतको घोड़े पर चढ़ नगर में आ पुत्रोंसे अपने स्त्रीत्व का सब वृत्तान्त सुना, कहा कि तुम सब प्रेमसे राज्य करो मैं वनको जाता हूं ऐसा कह वनको चला गया वहां पर एक तपस्वी के आश्रम के समीप तपस्या करने लगा जिसके गर्भद्वारा एक सौ पुत्र उत्पन्न हुये।

तापसेनास्यपुत्राणामाश्रमेष्वभवच्छतम्।
अथ सादायतान् सर्वान् पूर्वं पुत्रानभाषयत् ॥ २३ ॥
पुरुषत्वेसुतायूयं स्त्रीत्वे चेमे शतंसुताः ॥ २४ ॥

अन्तको सौ पुत्रोंको लेकर अपने राज्यमें गया और प्रथमके पुत्रों से कहा तुम मेरे पुरुष अवस्थाके पुत्र हो और यह मेरे स्त्रीत्व प्राप्त होनेके सौ पुत्र हैं इसलिये तुम प्रेमसे रहकर राज्य भोग करो।

लीजिये पण्डित जी! इस कथासे तो स्पष्ट प्रकट होगया कि ईश्वरीय नियम कुछ नहीं क्योंकि पुरुष अपने शरीर से स्त्री शरीरधारी होगया फिर उसी स्त्रीसे सौ पुत्रोंकी उत्पत्ति होगई।

श्री पं० जी—सेठजी बस कीजिये मैं इस विषय को सुन तृप्त होगया अब कल से किसी और विषयको सुनाइये।

सेठ जी—श्री महाराज मुझे तो अभी और सुनाना था पर आपकी

ऐसी इच्छा है तो इस समय समाप्त करता हूं। फिर देखा जायगा। ओं शम्। पं० जी तथा अन्य जन यथा योग्य के पश्चात् चलेगये।

इति अष्टादश परिच्छेद।

—(०)—

अथ एकोनविंशति परिच्छेद।

सेठजी——ने श्री० पंडितजीको वा अन्य महाशयों को आते देख नम्रता-पूर्वक नमस्ते कर कहा कि आइये विराजिये।

पं० जी——आयुष्मान् तथा अन्य महाशय यथायोग्य कह विराज-मान हुए।

सेठजी——ने कहा कि श्रीमहाराज आज मैंआपको आपकी आज्ञानुसार पुराणों से गणेश उत्पत्ति सुनाता हूं, देखियेः-

—(०)—

गणेश उत्पत्ति।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ३२ और ३३ से

शिवजी महाराज पार्वतीजीके साथ विवाह करने पीछे कैलाश पर्वत पर निवास करने लगे। कुछ कालके पश्चात् जया और विजया सखी पार्वती के साथ विचार करने लगीं कि शिवजी के पास असंख्यगण हैं जो उनकी आज्ञा पाकर द्वार पर रहते हैं। हमारे कोई भी गण नहीं यद्यपि महादेवके गण हमारे ही गण हैं तो भी हमारा मन उनसे नहीं मिलता। सखियों की यह बात सुन पार्वतीजी विचार करने लगीं। एक समय पार्वतीजी स्नान कर रही थीं नन्दी द्वार पर स्थित थे। शिवजी उसके निषेध करने पर भी भीतर चले गये तब पार्वती लज्जित हो स्नान से उठ बैठीं फिर सखीकी बात विचार हाथमें जल लेकर अपने शरीर से मैल उतार सब अवयवों सहित सुन्दर पुत्रको निर्माण कर द्वार पर बिठला दिया और कहदिया कि कोई भीतर न आने पावे॥

प्रतिष्ठाप्य तदांद्वारिनिवार्यो इहागमेत् ॥ ११ ॥

फिर दूसरी बार पार्वतीजी सखियों सहित स्नान करनेको बैठीं उसी समय महादेव जी गणों सहित पधारे और भीतर जाने लगे उस समय गणेश जी ने मना किया कि माताजी स्नान करती हैं और लकड़ी उठाई तब शिवजीने कहा कि मैं गिरिजापति हूं—और भीतर चलने लगे गणेशजी ने लकड़ी उठाकर ताड़न किया उस समय शिवजी ने क्रोधित होकर गणों को आज्ञा दी और आपस में संग्राम और बड़ा युद्ध हुआ इतने में ब्रह्माजी गये तब गणेश जीने उनकी डाढ़ी मूंछ उखाड़ लीं तब शिवजी को क्रोध आया और उनकी आज्ञासे अनेकों भूत प्रेत पिशाचादि आगये इधर पार्वतीने अपने गणोंके निमित्त दो शक्ति उत्पन्न कीं जिनके साथ बड़ा संग्राम हुआ अन्तको शिवजीने गणेश का शिर त्रिशूल से अलग करदिया।

एतदंतरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे ः
आगत्य च त्रिशूलेन शिरस्तस्यन्यपातयत् ॥

अध्याय ३३ ॥ ३६ ॥

जिसको सुन पार्वतीने हज़ारों शक्तियां उत्पन्न कर दीं जो संहार करने लगीं तब नारद आदि सब देवता महादेवजी सहित पार्वतीजी के मन्दिर में गये और अनेक प्रकार से विनय की तब उन्होंने कहा कि यदि मेरा पुत्र जी जावे और पूजनीय हो जावे तो सबको आराम हो सकता है वरन् नहीं तब शिवजीने शिरको तालाश कराया परन्तु जब वह नहीं मिला तब शिवजीने कहा कि हे देवताओ ! उत्तर की ओर जाओ उधर से जो प्रथम आता हुआ मिले उसीका शिर लाकर इसके शरीर में लगादो। वह चले गये प्रथम उनको एक दांत का हाथी मिला वे उसका शरीर छेदन करके लाये और उनके गले पर अर्थात् शरीर पर लगाया तो शिव, विष्णु और ब्रह्माजीने कहा कि जिस महात्मा के तेजसे हम सम्पूर्ण उत्पन्न हुए हैं वही तेज आकर प्राप्त हो । इतना कहते ही वह सुन्दर अंगयुक्त बालक उठ बैठा।

इत्येवमभिमंत्रेणमंत्रितं च यदापुनः ।२६।
तदोत्तस्थौ पनंश्चायंशुभांगः सुन्दरस्तदा ॥

तब इन गजाननका सब देवताओंने अभिषेक किया।

अभिषिक्तैस्तदादेवर्गणाध्यक्षैर्गजाननः ॥ ४० ॥

—(०)—

वामन पुराण अध्याय ५४ में लिखा है कि--

पर्वत पर महादेवजी पार्वतीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे एक दिन पार्वतीसे महादेवजीने काली कहा यह सुन वह हिमालय पर्वत पर तप करने चली गई और सौ वर्ष व्यतीत होने पर ब्रह्माजी वहां गये और कहा कि तेरे तपसे मैं प्रसन्न हूं तेरे सब पाप कट गये अब इच्छा पूर्वक तुम वर मांगो तब पार्वतीने कहा कि मेरा शरीर सुवर्णके समान हो जावे ब्रह्माजी यही वर देकर चले गये और पार्वती मन्दराचल पर्वत पर आकर महादेवजी के साथ रहने लगी महादेवजी भी हज़ार वर्ष तक महामोह में उनके साथ लिप्त हो गये तब सब देवता इन्द्र और अग्नि को साथ लेकर वहां गये तब अग्नि हंस का रूप धर वहां पहुंचे जहां महादेव आनन्द कर रहे थे वह तुरन्त पार्वतीको त्याग बाहर आये सब देवताओंने प्रणाम किया फिर महादेवजीने कहा कि कहो तब सबने कहा कि यदि आप देवताओंसे प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हो तो प्रथम आप इस महा ·······को त्याग दीजे तब महादेवजीने कहा कि मैं आपकी बात माननेके लिये तय्यार हूं पर मेरे तेज को कौन देवता धारण करेगा उस समय अग्निने कहा कि मैं तब उन्होंने वीर्य को छोड़ा उसको अग्नि ने पान कर लिया फिर महादेवजी मंदिर में गये और पार्वतीजी से कहा कि देवतादिक तेरे पुत्रको नहीं चाहते इस पर पार्वतीने सब को शाप दिया फिर शौचशालामें स्नानकी इच्छा करने पर मालिनी सुगंधित द्रव्यको ले उनके सुवर्ण मय शरीर पर लगाने लगी उससे जो मल उतरा उससे मालिनीके चले जाने पर पार्वतीने हस्ती के मुखके समान मुख वाला चार भुजाओं पुष्ट छाती और सुन्दर लक्षणों से युक्त पुरुषको रचा।

तस्यांगतायां शैलेयीमलाच्चक्रे गजाननम् ॥५६॥

चतुर्भुजंपीनवक्षः पुरुषं लक्षणान्वितम् ॥६०॥

फिर उस बालकको बना पृथ्वी पर छोड़ आप सुन्दर आसन पर स्थित हुईं और मालनी आकर पार्वतीके शिरको धोने लगी और हंसी जिसको पार्वतीजीने देखकर कहा कि तू क्यों हंसती है इस पर मालनीने कहा कि निश्चय तुम्हारे पुत्र होगा इसलिये हंसी आती है यह सुन पार्वतीजी विधान से स्नान करने लगीं फिर स्नान कर महादेवजीकी पूजाकर गृहको गईं फिर महादेवजी भी स्नान करने लगे उस समय आसनके नीचे पार्वतीजीका रचा हुआ मल पुरुष वहीं स्थित रहा और महादेवजीके शरीरका पसीना और विभूति सहित पानी जो पड़ा तिसके मेलसे प्रथम सूंडके द्वारा फूतकार पुरुष उपस्थित हुआ।

तत्संपर्कात् समुत्तस्थौ फूतकृत्यकरमुत्तमम्।
अपत्यंहिविदित्वा च प्रीतिमान्भुवनेश्वरः ॥६७॥

जिसको अपनी सन्तान जानकर प्रसन्नता पूर्वक ग्रहणकर पार्वती के समीप जाकर कहने लगे कि हे प्रिये प्रियगुणों से युक्त अपने पुत्र को देख यह सुन पार्वतीने वहां आकर अद्भुतरूप वाले पुत्रको अर्थात् जो पार्वतीजीने अपने मलका गजमुख पुरुष बनाया था वही देखा और प्रसन्न होकर पुत्रसे मिलीं तदनन्तर पुत्रके मस्तकको सूंघ महादेव पार्वती से कहने लगे कि हे देवि यह पुत्र नायकके बिना उत्पन्न हुआ है इस वास्ते इसका नाम विनायक होगा।

नायकेन विना देविमयाभूतोपि पुत्रकः ॥७२॥
यस्माज्जातस्तो नाम्ना भविष्यति विनायकः ॥७२॥

लिंगपुराण अ में लिखा है कि:—

एक बार देवतालोग यह विचार कर कि दैत्यलोग महादेवजीवा ब्रह्माजी को प्रसन्न कर मन माना वर ले लेते हैं और सदा हमारा पराजय करते हैं इस कारण शिवजीसे प्रार्थना करें कि दैत्यों के कर्मों में विघ्न और हमारे कर्मों में अविघ्न करनेके अर्थ तथा नारियोंको पुत्र देनेके लिये और मनुष्योंके सब कामको सिद्ध होनेके अर्थ गणपतिको उत्पन्न करें यह मनमें ठान सब देवता शिवजी के निकट जा स्तुति करने लगे उस स्तुतिको सुन शिवजीने देवताओंको दर्शन दिये जिससे सब देवता प्रसन्न हुए और बार २ प्रणाम करने लगे तब शिवजीने कहा कि अभीष्टवर मांगो हम प्रसन्न हैं उस समय सब देवताओं की ओर से बृहस्पतिजी ने कहा कि सब देवताओंके शत्रु दैत्य निर्विघ्न आपका आराधन करते हैं और

आप भी शीघ्र उन पर प्रसन्न हो जाते हैं अब सब देवताओंकी यहप्रार्थना है कि उनके कर्मोंमें विघ्न हुआ करें यह वर मिले इस प्रार्थना का सुन शिवजीने पार्वतीके गर्भ से पुत्र उत्पन्न किया जिनका मुख हाथी का सा था हाथों में त्रिशूल पाश धारण किये थे उनके जन्म होते ही पुष्पवृष्टि हुई।

ततस्तदा निशम्य वै पिनाकधृक् सुरेश्वरः।
गणेश्वरं सुरेश्वरं बपर्दधारसः शिवः ॥७॥

और गण गणेशजीके चरणोंमें प्रणाम करने लगे गजानन भी अपने माता पिताके आगे आनन्द से नृत्य करने लगे जिसके संस्कार शिवजीने किये और गोद में ले मस्तक सूंघा और कहा कि हे पुत्र दैत्योंके नाशके लिये देवता ऋषि और ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणोंके उपकार के लिये तुम्हारा अवतार हुआ है भूमि पर जो दक्षिणाहीन यज्ञ करे उसके धर्ममें तुम विघ्न करो जो अन्यायसे अध्ययन अध्यापन आदि कर्म करे उसके प्राण हरो तुम्हारा पूजन बिना श्रौतस्मार्त्त जो कार्य्य करेंगे उनको भी अमंगल ही होगा तुम्हारी पूजा बिना किये देवताओं के भी कार्य्य सिद्ध न होंगे हम विष्णु और इन्द्र भी जो कार्य्य आरम्भ में तुम्हारा पूजन न करें तो विघ्न करो।

गणेशउपपुराण अध्याय ७८ से ८१ तक।

सिन्धुनाम एक दैत्य राजा हुआ उसने अनेकान राजाओं को मारा जिस से बहुधा उसके सेवक होगये वेदोक्त कर्मोंके बन्द हो जाने से हाहाकार मचाया सब देवता और मुनी सम्मति कर विनायक जीकी स्तुति करने लगे स्तुति करते हुये उन ऋषियोंके आगे तेजसमूह आया जिसको देख सब देवादि विस्मित हुये पुनः वह तेज समूह सौम्य तेजस्वी मूर्त्तिवाला हो गया तब सबने नमस्कार किया देवजीने ऋषि आदिकों से कहा कि उस दैत्यके मारनेके लिये हमारा गिरिजाके घर अवतार होगा और हम तुम्हारा वाञ्छित मनोरथ शीघ्र पूरा करेंगे यह कह विनायक जी अन्तर्धान होगये एक दिन महादेवजी को तप करते हुये देख पार्वतीने कहा कि हे देव आप से बढ़कर और कौन है जिसका आप ध्यान करते हैं उन्होंने कहा कि विनायक जी का तब पार्वती ने कहा कि मुझको उनकी कैसे प्राप्ति हो महादेवजीने एकाक्षरमंत्र जपने को कहा पार्वतीजीने इस को स्वीकार कर जपने का प्रारम्भ कर दिया और बारह वर्ष तक निरन्तर जपा जिससे प्रसन्न हो मुकुटकुण्डल धारे दशभुज त्रिशूल धारी गणेशजी उनके आगे आये और कहा हम तुम से प्रसन्न हैं वर मांगो पार्वतीने कहा कि तुम मेरे पुत्र

होंगे और तुम्हारा वाञ्छित मनोरथ पूरा करेंगे अन्तर्ध्यान हो गये तदनन्तर गणेशजी की प्राप्ति के लिये बनकर सब सामिग्री द्वारा गजानन की मूर्तिबना गौरीजाने उनकी बहुत प्रकार से पूजा की तब तो वह मूर्त्ति चैतन्य होगई जिसके तेजसे गौरीजी मूर्छित हुगई थोड़ी देरके पश्चात् सावधान हो पार्वती ने कहा कि मुझसे पूजा न क्या बिगाड़ होगया तब वह तेज सौम्यमूर्त्ति वाला होगया पार्वती के पूंछने पर उस सौम्यमूर्त्ति ने कहा कि जिसका तुमने रात्रिदिन ध्यान किया वह हम गणेशजी तुम्हारी पुत्रता को प्राप्त हुये हैं तब पार्वती ने कहा कि आप बालकरूप हो जाइये जिससे हम लाड़ प्यार से खिलावें पार्वतीजी के वचन सुन वह अतिसुन्दर बालक होगये तब गौरीने उनको हाथोंमें उठा लिया और बहुत प्रसन्न हुई महादेवजी भी उसको देख बहुत प्रसन्न हुये।

नोट—शिव, वामन, लिंगपुराण और गणेश उपपुराणमें गणेश महाराज की उत्पत्ति पढ़कर स्वयं विचार कीजिये कि किस २ प्रकारसे श्रीमान्का जन्म हुआ हम और कुछ कहना नहीं चाहते।

श्री० पं० जी—बस सेठजी अब इतना ही रहने दीजिये और विषय सुनाइये

श्री० पं० जगन्नाथजी—सेठजी आज हमें तनिक काम है अगर आप की राय और पं० जी की आज्ञा हो तो आज यहां ही विश्राम दीजिये—और विषय कल।

पंडितजी—अच्छा सेठजी रहने ही दीजिये क्योंकि नित्यप्रति के श्रोताओंका बीचमें न सुनना हानिकारक होगा।

सेठजी—जैसी श्रीमान्की आज्ञा। ओशम्।

सब यथायोग्यके पश्चात् चले गये।

इति एकोनविंशति परिच्छेद।

—(०)—

अथ विंशति परिच्छेद।

आर्य्य सेठ—श्रीमान् पण्डितजी अन्य सभ्यों सहित पधारे उनको नमस्ते की और कहा कि आइये पधारिये।

पंडितजी—चिरायुष्मान् कहा और अन्य सज्जनोंने यथायोग्य की

आर्य्य सेठ—आज विषय में आप को मृतकश्राद्ध के विषय में सुनाता हूं, आप कृपा कर सुनिये श्रीमान् इस विषय में पुराणों में अनेकानेक प्रमाण हैं परन्तु वेद में कोई प्रमाण नहीं मिलता वरन् वहां तो निम्नलिखित प्रमाण स्पष्ट कह रहा है कि मृतक शरीर के भस्म होने के पश्चात् कोई कर्म नहीं जैसा कि:—

भस्मान्तꣳशरीरम् ।

इसके उपरान्त अस्मै सभाके सभ्यगण एकस्वर होकर आवागमन को भी मानते हैं जिसके अर्थ आने और जाने अर्थात् मरने और उत्पन्न होने के हैं फिर भला आप ही बतलाइये कि मर गये वह उत्पन्न होगये तो फिर आप श्राद्ध किसका करते हैं पण्डितजी जीव अनादि है जो अपने २ कर्मानुसार जन्म मरण को धारण करता है और जिस भांति मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतार नये वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार जीव एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में प्रवेश करता है जैसा कि श्रीमद्भागवत स्कंद १० पूर्वार्द्ध अध्याय १ में लिखा है।

देहे पंचत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहांतरमनुप्राप्य प्राक्तनंत्यजते वपुः॥३९॥

जब देहीका अन्त आता है उस समय जीवात्मा कर्म्मानुकूल परवश हो दूसरे देहको प्राप्त हो अपने पूर्व देह को त्याग करता है इसके अतिरिक्त जिस प्रकार मनुष्य चलते समय अलग पैर को उठा फिर पिछले पैर को उठाता है जैसे जोंक, उसी भांति शरीरस्थ जीवात्मा कर्म्मानुकूल अपने शरीरको छोड़ दूसरे शरीर को ग्रहण करता है जैसा कि—

व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
तथा तृण जलूकेवं देहीकर्म गतिंगतः ॥४०॥

इसके पश्चात् पुराणों में अनेक लेख उपस्थित हैं गीता, महाभारत भी पुकार २ कर कह रहे हैं फिर आप मृतकश्राद्धको क्यों कर मानते हैं जब कि प्रत्येक पुरुष अपने कर्म्मों का फल पाता है न कि पुत्रादिके कर्म्मोंका, यदि ऐसा ही ठीक है तो जिस पर धन है वह उसको व्यय कर अपने पितादिको स्वर्ग पहुंचा सकता है तो फिर उस प्राणीके पाप, पुण्यका कोई ठीक नहीं यथार्थ में

वहाँ भी घूंस काम देती है, पण्डितजी यह सब लड़कों के खेल हैं, जिन्होंने भारत वासियों को चक्कर में डाल अपना खूब प्रयोजन निकाला है, श्रीमान्! यदि आप इन वेदमन्त्रों के अर्थों को विचार करें जो पण्डितगण श्राद्ध समय पढ़ते हैं तो प्रत्यक्ष प्रकट हो जावेगा कि उनके वह अर्थ नहीं जैसा कि पौराणिकजन सुनाते हैं प्रथम आप सत्यअर्थों को श्रवण कर लीजिये ।

पितृ शब्द निघण्टु ४ । १ में पिता पद आया है । पिताका बहुवचन ही पितरः है । निरुक्त ४ । २१ में पितापद के व्याख्यान में नीचे लिखा मन्त्र ऋग्वेद १ । १६४ । ३३ का प्रमाण दिया है किः—

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र । इत्यादि ।

फिर निरुक्तकार इसके अर्थ करते हुवे पितापदका अर्थ इस प्रकार करते हैं किः—

पिता पाता वा पालयिता वा ॥

अर्थात् पिता पालने वा रक्षा करने से कहा जाता है । (द्यौर्मे पिता) मन्त्रमें पिता शब्द सूर्यका वाचक है, और ऐसा ही स्वामीजी ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं । तात्पर्य्य यह है कि रक्षा वा पालने वाले जनकादि मनुष्यवर्ग राजा, सूर्य, चन्द्र, किरणें वायुभेद जिनका राजा यम कहाता है, इत्यादि रक्षकों और पोषन करने वालोंका नाम पितर है वेदों में बहुत स्थानों में यम पितरों का राजा लिखा है । जैसे मनुष्योंका राजा मनुष्य, मृगोंका राजा मृगराज सिंह, ओषधियोंका राजा सोम नामक ओषधि ऋतुओं का राजा ऋतुराज वसन्त है इसी प्रकार वायुभेद जो हमारे रक्षक और पालक हैं उनका भी राजा यम वायु ही है जैसा किः—

माध्यमिको यम इत्याहुर्नैरुक्ताः तस्मात्पितॄन्माध्यमिकान्मन्यन्ते स हि तेषां राजेति ॥

पितरःपद निघण्टु ५ । ५ में और उसकी व्याख्या निरुक्त ११ । १८ में है ।

अर्थात् यम मध्यस्थान देवता है यह नैरुक्तोंका मत है, इस लिये पितरों को भी मध्यस्थान देवता मानते हैं क्योंकि वह (यम) उन पितरों का राजा है । फिर निरुक्त ७ । ५

वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्षस्थानः ॥

वायु अन्तरिक्ष स्थान अर्थात् मध्यस्थान देवता है। ऐसा ही ऋग्वेद १०। १४। १३ में:—

यमं हि यज्ञो गच्छत्यग्निदूतः।

अग्नि जिसका दूत लेजाने वाला है वह यज्ञ वायुको प्राप्त है। यहां भी यमका अर्थ वायुविशेष है। और यजुः ८। ५७

यमः सूयमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वायुः पूयमानः।

यहां भी यम नाम वायुविशेष का है।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ऋ० ८। २४। २२

यहां भी यम नाम वायुविशेषका है क्योंकि इस मन्त्रका देवता इन्द्र है और इन्द्र ऊपर लिखे निरुक्त ७। ५

वायुर्वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानः।

के अनुसार वायु का भी नाम है।

इसके अतिरिक्त यह भी वेद की शिक्षा है कि प्रत्येक लिङ्गशरीरी जीवात्मा स्थूल शरीर छोड़ कर आकाश में १२ दिन तक १२ आकाशी पदार्थों से आप्यायित (डिवेलप) होता है तब इसे किसी लोकमें कर्मानुसार जन्म मिलता है। हां, जिनका लिंगशरीर भी छूट जाता है उन मुक्तपुरुषों की यह अवस्था नहीं है।

सविता प्रथमेहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तम बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ॥

(यजुः ३९। ६) श्रीमद्दयानन्द सरस्वती भाष्यम्—

हे मनुष्यो! इस जीवको [प्रथमे] पहले [अहन्] दिन [सविता] सूर्य्य [द्वितीये] दूसरे दिन [अग्निः] अग्नि, तीसरे वायु, चौथे महीना

पांचवें चन्द्रमा छठे वसन्तादि ऋतु, सातवें मरुत्, आठवें सूत्रात्मा, नवें प्राण, दशवें उदान, ग्यारहवें विद्युत्, और बारहवें दिन सब दिव्यगुण प्राप्त होते हैं ३६ । ६ ।

बस इससे यह भी जाना जाता है कि सूर्य्य, अग्नि, वायु, चन्द्र, प्राण, उदान, बिजुली और आकाशगत अन्य सब दिव्यपदार्थों का (जो देवता कहाते हैं) हवन करने से सुधार होता है इसीको तृप्ति और अनुकूलता भी कह सकते हैं । इससे अग्निमें होमद्वारा पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्यौलोक इन तीनोंकी शुद्धि, वृद्धि और तृप्ति होनेसे आकाशगत पितरों (वायु विशेषों का भी उपकार सम्भव है । परन्तु मरण प्राप्त प्राणी किसी प्रकार परमात्मा की व्यवस्थानुकूल १२ दिनमें भिन्न भिन्न नियत पदार्थों को छोड़ अन्यत्र कहीं नहीं जा सकते और इसके अनन्तर स्थूल शरीर पाप जन्म लेकर भी एक लोकसे दूसरे लोक में नहीं आ जा सकते । इसलिये वर्त्तमान प्रचलित श्राद्धदानादि कार्यों के पदार्थों की प्राप्ति ब्राह्मणों द्वारा पितरों को सर्वथा नहीं हो सकती हां, अग्निहोत्र से तीनों लोकका उपकार होता है ।

और इन्हीं आकाशगत पदार्थोंका तात्पर्य्य संस्कारविधिस्थ अन्त्येष्टि प्रकरण समस्त मन्त्रों में भी लग जायगा ।

ये समानाः समनसः पितरोयमराज्ये तेषांल्लोकः स्वधानमो-
यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ अ० १९ मं० ४५

(ये) जो (समानाः) सदृश (समनसः) तुल्य विज्ञानयुक्त (पितरः) प्रजाके रक्षक लोग (यमराज्ये) न्यायकारी राजा के राज्य में हैं (तेषाम्) उनका (लोकः) स्थान (स्वधा) अन्न (नमः) सत्कार और (यज्ञ) प्राप्त होने योग्य न्याय (देवेषु) विद्वानों में (कल्पताम्) समर्थ हो ॥ ४५ ॥

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषाᳬ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिंल्लोके शतᳬ समाः ॥ ४६ ॥

(ये) जो (अस्मिन्) इस (लोके) लोकमें (जीवेषु) जीवते हुओं में (समानाः) समान गुण कर्म स्वभाव वाले (समनसः) समान धर्म में मन रखने वाले (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीते पितर हैं (तेषाम्) उनकी (श्रीः) लक्ष्मी (मयि) मेरे समीप (शतम्) सौ (समाः) वर्ष तक (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥ ४६

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं यईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥

ऋ० १० । १५ । १ ।

(ये) जो (पितरः) पिता आदि रक्षक जन [परासः] बड़े [अवरे] छोटे (मध्यमाः) मध्यावस्था वाले हैं (ते) वे (पितरः) पालक रक्षक लोग (नः) हमको (उत् ईरताम्) उन्नत करें (सोम्यासः) वे सौम्यलोग [असुम्] जीवन को (उत् ईयुः) उच्च [अधिक] प्राप्त हों (अवृकाः) जो किसी से शत्रुता नहीं करते और [ऋतज्ञाः] सत्यज्ञानी हैं वे (हवेषु) जब २ हम पुकारें तब २ (उत् अवन्तु) उच्च भावसे रक्षा करें, इसमें मृतश्राद्ध का लेशमात्र भी वर्णन नहीं ।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥

य० अ० १६ । मं० ५१

(ये) जो (नः) हमारे (सोम्यासः) शान्त्यादि गुणों के योगसे योग्य (वसिष्ठाः) अत्यन्तधनी (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) पालन करने हारे ज्ञानी पिता आदि (सोमपीथम्) सोमपानको (अनूहिरे) प्राप्त होते और कराते हैं (तेभिः) उन (उशद्भिः) हमारे पालन की कामना करने हारे पितरोंके साथ (हवींषि) लेने देने योग्य पदार्थों की (उशन्) कामना करने हारा (संरराणः) अच्छे प्रकार सुखोंका दाता (यमः) न्याय और योगयुक्त सन्तान (प्रतिकामम्) प्रत्येक कामको (अत्तु) भोगे ।

भावार्थ–पिता आदि पुत्रोंके साथ और पुत्र पिता आदि के साथ सब सुख दुःखों के भोग करें और सदा सुखकी वृद्धि और दुःख का नाश किया करें॥५१॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्म्माणि चक्रुः पवमान धीराः । वन्वन्नवातः परिधीꣳरपोर्णु हि वीरेभिरश्वैर्मघवा भवानः ॥५२ ॥

हे (पवमान) पवित्र स्वरूप पवित्र कर्म कर्त्ता और पवित्र करने हारे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त सन्तान ! (त्वया) तेरे साथ (नः) हमारे (पूर्वे)

पूर्वज (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग जिन धर्मयुक्त (कर्माणि) कर्मों का (चक्रुः) करने वाले हुए (हि) उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें (अषाळ्हः) हिंसाकर्मरहित (वन्वन्) धर्म का सेवन करते हुए सन्तान ! तू (वीरेभिः) वीर पुरुष और (अश्वैः) घोड़े आदि के साथ (नः) हमारे शत्रुओं को (परिधीन् परिध अर्थात् जिनमें चारों ओर से पदार्थों का धारण किया जाय उन मार्गों को (अपोर्णु हि) आच्छादन कर और हमारे मध्य में (मघवा) धनवान् (भव) हो ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग अपने धार्मिक पिता आदिका अनुकरण कर और शत्रुओं को निवारण करके अपनी सेना के अङ्गों की प्रशंसा से युक्त हुए सुखी होवें ॥ ५३ ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् । तऽआगताऽवसा शन्तमेनाथानः शंयोरपोदधात् ५५

हे (बर्हिषदः) उत्तम सभा में बैठनहारे (पितरः) न्याय से पालना करने वाले पितर लोगो ! हम (अर्वाक् पश्चात् जिन (वः) तुम्हारे लिये (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (इमा) इन (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों का (चकृम) संस्कार करते हैं उनका आप लोग (जुषध्वम्) सेवन करें और (शन्तमेन) अत्यन्त कल्याणकारक (अवसा) रक्षणादि कर्मके साथ (आ, गत) आवें (अथ) इसके अनन्तर (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख तथा (अरपः) सत्याचरण को (दधात) धारण करें और दुःख को सदा हमसे पृथक् रक्खें ॥ ५५ ॥

आयन्तुनः पितरस्सोम्यासोग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोधिब्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

जो (सोम्यासः) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमनादि गुण युक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (नः) हमारे (पितरः) अन्न और विद्या के दानसे रक्षक, जनक, अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (ते) वे (देवयानैः) आप्त लोगोंके जाने आने योग्य (पथिभिः) धर्म्मयुक्त मार्गों से (आ, यन्तु) आवे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पढ़ाने उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्त्तमान होके (स्वधया) अन्नादि से (मदन्त) आनन्द को प्राप्त हुए

(अस्मान्) हमको (अधि, ब्रुवन्तु) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ५८ ॥

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशन्तन्वङ्कल्पयाति ॥ ६० ॥

(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अच्छे प्रकार अग्नि विद्याके ग्रहण करने तथा (ये) जो (अनग्निष्वात्ताः) अग्नि से भिन्न अन्य पदार्थ विद्या के जानने हारे वा ज्ञानी पितृ लोग (दिवः) विज्ञानादि प्रकाश के (मध्ये) बीच (स्वधया) अपने पदार्थ के धारण करने रूप क्रिया वा सुन्दर भोजन से (मादयन्ते) आनन्द को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन पितरोंके लिये (स्वराड्) स्वयं प्रकाशमान परमात्मा (एताम्) इस (असुनीतिम्) प्राणों को प्राप्त होने वाले (तन्वम्) शरीर को (यथावशम्) कामना के अनुकूल (कल्पयाति) समर्थन करें ॥ ६० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर ! जो अग्नि आदि पदार्थ विद्या को यथार्थ जानके प्रवृत्त करते और जो ज्ञान में तत्पर विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं उनके शरीरों को दीर्घायु कीजिये ॥ ६० ॥

और यदि " अग्नि में डाले गये " अर्थ को भी मान लें तो भी यह अर्थ होगा कि—" जो अग्नि में डाले गये और जो न डालेगये और आकाश के मध्य वर्त्तमान हैं, उन्हें स्वराट् परमात्मा शरीर देता है और वे अपने अन्नादि से (जहां जन्म होता है) आनन्दित होते हैं ।

आच्याजानु दक्षिणतोनिषद्येमं यज्ञमभिगृणीतविश्वे । माहिꣳसिष्ट पितरः केनचिन्नोयद्वआगः पुरुषता कराम ॥ ६२ ॥

हे [विश्वे] सब [पितरः] पितृ लोगों तुम [केनचित्] किसी हेतु से [नः] हमारी जो [पुरुषता] पुरुषार्थता है उसको [माहिंसिष्ट] मत नष्ट करो जिस से हम लोग सुखको [कराम] प्राप्त करें [यत्] जो [वः] तुम्हारा [आगः] अपराध हमने किया है उसको हम छोड़ें तुम लोग [इमम्] इस [यज्ञम्] सत्कार

रूप व्यवहार को [अभि गृणीत] हमारे सम्मुख प्रशंसित करो हम [जानु] जानु अवयव को [आच्य] नीचे टेकके [दक्षिणतः] तुम्हारे दक्षिण पार्श्व में [निषद्य] बैठके तुम्हारा निरन्तर सत्कार करें ॥ ६२ ॥

जिनके पितृ लोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग इनके समीप जावें तब भूमिमें घुटने टिका नमस्कार कर इनको प्रसन्न करें, पितर लोग भी आशीर्वाद विद्या और अच्छी शिक्षा उपदेश अपनी सन्तानों को प्रसन्न करके सदा रक्षा किया करें ॥ ६२ ॥

आसीनासोअरुणीनामुपस्थे रयिन्धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तइहोर्जन्दधात ॥६३॥

हे [पितरः] पितृलोगो [तुम [इह] इस गृहाश्रम में [अरुणीनाम्] गौरवर्णयुक्त स्त्रियों के [उपस्थे] समीप में [आसीनासः] बैठे हुवे [पुत्रेभ्यः] पुत्रोंके लिये और [दाशुषे] दाता [मर्त्याय] मनुष्य के लिये [रयिम्] धनको [धत्त] धरो [तस्य] उस [वस्वः] धनके भागोंका [प्र, यच्छत] दिया करो जिससे [ते] वे स्त्री आदि सब लोग [ऊर्जम्] पराक्रम को [दधात] धारण करें ॥ ६३ ॥

ऐसे ही मन्त्र दायभाग का मूल है।

वे ही वृद्ध हैं जो अपनी ही स्त्री के साथ प्रसन्न अपनी पत्नियों का सत्कार करने हारे सन्तानों के लिये यथायोग्य दायभाग और सत्पात्रों को सदा दान देते हैं और वे सन्तानों को सत्कार करने योग्य होते हैं। २६ । ६३ ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहः पुनन्तु प्रपितामहः पवित्रेण शतायुषा पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै अ० १६ मं० ३७ ॥

सोम के योग्य पितर पूर्णायु के दाता पवित्रता से मुझको पवित्र करो पितामह पूर्णायु के दाता पवित्र से मुझ को शुद्ध करो प्रपितामह शुद्ध करो पूर्णायु को प्राप्त करूं ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारम्पुष्करस्रजम् ।
यथेह पुरुषोसत् ॥ यजु० अ० २ मं० ३३ ॥

पूर्व मन्त्र में तो पिता पितामह और प्रपितामह से प्रार्थना है कि हमें पवित्रता का उपदेश और आचरण करावें, दूसरे का यह अर्थ है:—बड़ों को चाहिये कि (यथा) जिस प्रकार (इह) इस कुल में (पुरुषः) पुरुष (असत्) होवे उस प्रकार (पितरः) पिता लोग (गर्भम्) गर्भ का (आधत्त) आधान करें और (पुष्करस्रजम्) सुन्दर (कुमारम्) पुत्र को उत्पन्न करें ॥

ये च जीवा ये च मृता जाता ये च यज्ञियाः
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥अथर्व० १८।४।५७

इस मन्त्र में यह कहा गया है कि मृतक को फूंकते समय जो घृत की धारा वह आहुती है, वह जीवित प्राणियों और मरे हुवे शवों (लाशों) की सुदशा करती है, अर्थात् जीवितों को रोगादि से बचाती और मरों को सड़ने आदि दुर्गों से रोकती है। पदार्थ—(ये च जीवाः) जो जाते हैं (ये च मृताः) और जो मरे शरीर हैं (ये जाताः) जो बच्चे जन्मे हैं (ये च यज्ञियाः) और जो यज्ञ के उपयोगी हैं (तेभ्यः) उन सबकी भलाई के लिये (घृतस्य) घृत की (व्युन्दती) टपकती (मधुधारा) मधुरादि युक्त (कुल्या) धारा (एतु)प्राप्त होवे ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणंच देवम्

अथर्व० १८।१।५४।

अर्थात् मृत शरीर को फूंकते हुए लोग इस मन्त्र को पढ़ते हैं कि—जहां इससे पूर्व मरे हुये शरीर पूर्वजों के गये, वहां ही, और जिन मार्गों में शरीर के सूक्ष्म अवयव ही यान (सवारी) हैं उन मार्गों से यह भी जाता है और *यम तथा * वरुण नामक आकाश में विराजने वाले भौतिक देवताओं में मिल जाता है। पदार्थ (प्रेहि प्रेहि) जा जा (पूर्याणैः पथिभिः) पुर=शरीर ही जहाँ यान=सवारी है उन मार्गों से जा। (येन) जिन मार्गों से (ते पूर्वे) तुझसे पहिले (पितरः) बाप दादे (परेताः) मरे हुए गये और वहां आकाश में (यमं देवम्) वायु विशेष देव को (च) और (वरुणम्) जल के दिव्य स्वरूप को (उभा) इन दोनों (राजानौ) प्रकाशमान देवों को जो कि (स्वधया) श्मशानाहुति जो स्वधा है उससे (मदन्तौ) सुधरे हुये हैं उन्हें (पश्यासि) देखता=प्राप्त होता है तू ॥

---

*देखो निघण्टु ५।४ और निरुक्त १०। १६—२१ अन्तरिक्ष देवता प्रकरण ॥

अर्थात् मृतशरीर की दुर्गति नहीं होती, किन्तु स्वधा जो उत्तम द्रव्यों की पितृयज्ञमें आहुति हैं उससे आकाश में के [यम] वायु वरुण जल बिगड़ते नहीं, किन्तु [मदन्ती] अच्छे प्रसन्न उत्तम रहते हैं और उन्हींमें मृतशरीर मिल जाता है अर्थात् शरीर का गीला अंश वरुणमें और शुष्कअंश यममें मिल जाता है ।

ये निखाता ते परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । त्वं तान्वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥ अथर्व १८ । २ । ३४-३५ ॥

इन दोनों मन्त्रों में यह कहा गया है कि जो जो शरीर किन्हीं कारणों से भूमि में दब गये, जिनके देह ऊपर पड़े रहगये, जो बिना घृतादि फुंक गये जो वायु नें उड़ गये, अग्नि में नहीं फुंकने पाये, अग्नि में किया हुआ होम उन सब आकाशगत मृत प्राणिशरीरावयवों को प्राप्त होकर उनकी सद्गति= अच्छी दशा करता है ॥ .

पदार्थ—[ये निखाताः] जो दबगये [ये परोप्ताः] जो इधर उधर पड़ रहगये [ये दग्धाः] जो केवल फुंक गये [ये च] और जो [उद्धिताः] ऊपर उड़ गये [अग्ने]अग्नि [तान् सर्वान्] उन सब को [हविषे] होम के पदार्थ [अत्तवे] खानेके लिये [आवह] प्राप्त कराता है वा करावे ॥ ३५ ॥ [ये अग्निद[illegible] ः जो केवल अग्नि में फुंके [अनग्निदग्धाः] और जो अग्नि में भी नहीं फुंके [दिवः मध्ये] आकाश के मध्य हैं [जात वेदः] अग्ने ! [तान्] उनको [यदि] यदि [त्वम्] तू [वेत्थ] जानता = प्राप्त होता है तो वे [स्वधया] स्वधा कहकर दी हुई आहुति से [मादयन्ते] प्रसन्न होते अर्थात् सड़ने को छोड़कर अच्छी दशा को प्राप्त होते हैं, अतः वे [स्वधया] उसी आहुति से [स्वधितिम्] पैतृक [यज्ञम्] यज्ञ का [जुषन्ताम्] सेवनकरें ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुतद्यां तेभ्यः पितृभ्योनमसाविधेम ॥
अथर्व० १८ । २ । ४९ ॥

अर्थ—[ये] जो [नः] हमारे [पितुः पितरः] बाप के बाप हैं, अतएव [ये] जो हमारे [पितामहाः] बाबा हैं [ये] जो कि [उरु अन्तरिक्षम्] इसबड़े आकाश को [आविविशुः] प्रवेश कर गये हैं [ये] जो कि [पृथिवीम्] पृथिवी को [उत] और [द्याम्] आकाश को [आक्षियन्ति] छाय रहे हैं [तेभ्यः] उन [पितृभ्यः] मृत शरीरों के लिये [नमसा विधेम] हम आहुति करते हैं ॥

अर्थात् पुत्रादि का कर्त्तव्य है कि पिता वा पितामहादि पूर्वजों की अन्त्येष्टि श्रद्धा पूर्वक करें, ऐसा करने से पृथिवी और अन्तरिक्ष लोक में जो मृतपूर्वज लोगों के शरीराऽवयव वायु आदि में हैं वे बिगड़ते नहीं, किन्तु सुधर कर मनुष्यादि प्राणियों को दुःख नहीं देते हैं। अन्यथा वायु जल को विकृत करके रोगादि उत्पन्न करते हैं।

अब बतलाइये कौन से वेद मन्त्र की आज्ञा से मृतक पितरों को श्राद्ध मिलता है। इसके उपरान्त श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्य का नाम है।

श्रत्सत्यंदधाति या क्रिया श्रद्धा–
श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम् ॥

जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण कियाजाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और:—

तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्।

जिस कर्मसे तृप्त हो उसको तर्पण कहते हैं यह तृप्ति जीवित माता पिता आदिके साथ श्रद्धासे सेवा करने से होती है न कि मरने पर मरनेपरतो जीवात्माका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता, फिर श्राद्ध और तर्पण कैसा?

पण्डितजी——अब हम आपको मृतकश्राद्ध विषय की असली कार्य्य वाही सुनाते हैं जो पुराणों में लिखी हैं आप अच्छे प्रकार सुन उस पर विचार कीजिये, शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ३० में लिखा है।

किसी समय फल्गुनी नदी के किनारे लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जी आये और सीता सहित पिताकी आज्ञा स्मरणकर वहां स्थितहुये और श्राद्धका समय जान कहने लगे अब क्या करना चाहिये तब फललेनेके लिये लक्ष्मण को वन भेजा जब बहुत समय होगया तब स्वयं आप चले जानकी जी अकेली रह गईं और उसने विचारा कि श्राद्धका समय जाता है न मालूम अभी तक क्यों नहीं आये तब इंगुदीके पिण्ड बना कर स्वयम् जानकीजीने दिये तब दशरथादि पितरोंके हाथ निकले।

किंचिद्वस्तुगृहीत्वातुतेनैव पिण्डकास्तदा।
दत्तायदातयातत्रहस्ताश्चनिःसृतास्तदा ॥११॥

और तृप्त होकर कहने लगे, जनकात्मजे तुमधन्य हो जानकी जीने उनके अनेक प्रकार भूषणधारी हाथों को देख कर कहा तुम कौन हो जानकीजीके यह

वचन सुनकर उनके श्वसुर बोले कि हे पतिव्रते मैं तेरा श्वसुर हूं तुम्हारे पिण्ड दान से मैं तृप्त होगया हूं तुम्हाराश्राद्ध भी सफल होगया ।

अहं दशरथोनामश्वशुरस्ते च सुव्रते ।
तृप्ताः स्मतव पिण्डेनश्राद्धं ते सफलंकृतम् ॥१४॥

ऐसा कहने पर जानकी बोली इस तुम्हारे हाथ निकालने का विश्वास हमारे स्वामी न करेंगे. ऐसा कहने पर दशरथ बोले कि हे अन्घ इस विषय में तुम साक्षी करलो यह सुनकर फल्गूनदी, गौ अग्नि तथा केतकीसे कहा कि तुम इस वार्ता को अच्छे प्रकार सुनलो इस में ये सब साक्षी हुए, तब वे फल्गूनदी आदि से अन्तर्धान हुए इस अवसर में रामचन्द्रजी आये और जानकीजीसे बोले कि हे साध्वि तुम शीघ्र पवित्र हो जाओ क्योंकि श्राद्धका समय आगया तब जानकी विस्मृत हो कुछ न बोलीं तब रामनेउनको आश्चर्य्ययुक्तदेख जानकी जीसे पूंछा फिर उन्होंने पूर्वका सब वृत्तांत कह सुनाया तब वह भ्रान्तयुक्त हो लक्ष्मण जी से बोले कि तुम ने जानकी जी का कहना सुना हम-ने तो कभी ऐसा नहीं देखा जैसा यह कहती हैं ।

अस्माभिर्विधिनानैव दृष्टश्चैवाधुनातया ॥२३॥

इससे विदित होता है कि यह काम करने के लिये असत्यभाषण करती हैं तब जानकीजी लज्जित हो कहने लगी मैंने फल्गूनदी, गाय अग्नि और केतुकी इन चार को साक्षी कर लिया है श्रीरामजीने कहा कि यदि यह चारों साक्षी दे देंगे तो हम तुम्हारे वचनों को सत्य मान लेंगे इतना कह श्रीरामजीने उन चारों साक्षियों से पूंछा तो वह सब मोहित हो कहने लगे कि हम इस विषय को नहीं जानते ॥२५॥

ते सर्वेमोहमापन्ना न जानीमोवयंत्विदम् ॥२६॥

यह सुन दोनों भाई आपस में हास्य कर कहने लगे कि अब श्राद्ध करना चाहिये दिन बहुत चढ़ आया और श्राद्ध बिना भोजनोंके करना चाहिये तब जानकी अत्यन्त दुःख से दुखी होकर कहने लगी कि यह क्या हुआ और फिर पाक बनाने लगी इधर श्राद्ध समय श्रीरामजी ने पितरों का आवाहन किया तब सूर्य्यके मण्डलसे वाणी निकली कि हे पुत्र अब तुम क्यों हवन करते हो इसने तो हमको तृप्त कर दिया तब रामने कहा कि मैं ऐसे कभी न मानूंगा फिर सूर्य्यसे वाणी निकली कि पापरहित कियेहुए श्राद्धको फिर नहीं करना चाहिये फिरभी रामने उनके वाक्यों को नहींमाना तब सूर्य्य साक्षीहोकर बोले कि अब तुम क्यों

श्राद्ध करते हों तब राम "जय" ऐसा शब्द करके राम लक्ष्मण से बोले हम धन्य हैं जब कि कुलवधु ऐसी श्रेष्ठ है फिर राम लक्ष्मण भोजन कर परस्पर कहने लगे कि इन साक्षियोंने साक्षी क्यों नहीं दी, इस पर सीताजीने उन चारों को शाप दिया कि हे नदी जो तूने सुना और देखा तथापि सत्य नहीं कहा इससे तू पाताल में जाकर बह, केतकी आज से शिवके मस्तक पर चढ़ने योग्य न होगी निकट खड़ी गाय से कहा कि जो तू ने सत्य नहीं कहा इसलिये तू पूंछसे शुद्ध और मुंह से अशुद्ध और अग्निसे कहा कि तू सर्वभक्षी होगी।

पंडितजी—प्रथम तो यह विचारिये कि श्रीरामको सनातनी भाई ईश्वरावतार मानते हैं परन्तु यहां इतनी भी सुध नहीं कि जानकी जी श्राद्ध कर चुकीं द्वितीय जब जानकीजीने दशरथ जीके हाथ निकालने की बात कही तो श्रीरामजीने कहा कि हमने तो कभी ऐसा नहीं देखा, तिस पर सीताजीने साक्षियोंको पेश किया परन्तु किसी ने साक्षी नहीं दी, फिर आप इस कथा से क्या प्रयोजन सिद्ध करते हैं, हमारी समझमें तो शिवपुराण के कर्त्ताने श्राद्धमाहात्म्य को बढ़ाने के लिये श्रीराम के नामसे श्राद्धकी कथाको गढ़ लिया फिर भी विचारशीलोंकी दृष्टिमें कई दोष दृष्टि आ रहे हैं अब आगे और श्रवण कीजिये।

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय।

१० में लिखा है कि पूर्व समय में कुरुक्षेत्रके बीच कौशिक नाम एक महात्मा हुए जिनके सात पुत्र थे जो गर्ग ऋषिके शिष्य हुए महात्मा कौशिक के मर जाने पर दैवयोग से बड़ा कठिन दुर्भिक्ष पड़ा वह सब ऋषिके यहां गाय चराया करते थे एक दिन अन्नके न मिलने पर सब भाइयोंने यह कुविचार किया कि अब अन्न नहीं मिलता इसलिये इस कपिलाको ही भक्षण करलें जब सबजनोंने इस बात का विचार किया तो उनमेंसे छोटाभाई बोला कि यदि इसके मारनेका ही विचार है तो श्राद्धकेरूप अर्थात् नामसे वध करो।

यद्यवश्यमियंवध्याश्राद्धरूपेणयोज्यताम् ॥५२॥

ऐसा करने से मारनेका दोष हमको न लगेगा क्योंकि पितृलोग भी इसको अभक्ष्य समझते हैं॥

श्राद्धेनिभोज्यमानायां पापं नश्यतिनोध्रुवम् ॥५३॥

तब सब ज्येष्ठ भाइयोंने आज्ञादी अच्छा श्राद्धकेलियेही वधकरो ऐसाविचार कर सबसे छोटेने श्राद्ध करने का उद्यो। किया तब दो भाइयोंको दो और तीन भाइयोंकोपितृब्राह्मण और एकको अतिथि बनाया अर्थात् सब से छोटा श्राद्ध कर्ता

हुआ इस प्रकार उन सबने उस कपिलाको मन्त्रपूर्वक श्राद्धविधानसे भक्षण कर लिया इस के उपरान्त सब हत्यारोंने गुरुसे कहा कि कपिलाको शेरने खा लिया बछड़ा आप लीजिये गुरुमहाराजने कुछ विचार किया और जाना कि ऐसाही हुआ होगा मरनेके पीछे यह सब के सब दशार्ण देशमें बहेलिये हुए चूंकि पितरोंके भाव से वध किया था इसलिये पूर्वजन्मकी जातिका स्मरण बना रहा और व्याध के रूपमें पाप न करने से और तीर्थयात्राके प्रभाव से मरने पर कालिंजर पर्वत पर सब के सब मृग हुए वहां भी विज्ञान रहने से सुकर्म करने के कारण मानससरके किनारे पर सातों चक्रवाक हुये फिर इस योनिमें वैराग्य रहा जिस से मरने पर ब्राह्मण हुए उसमें भी योगाभ्यासी फिर वह कालान्तर में परमपद को प्राप्त हुए इस लिये ऋषियोंने कहा है कि जब पितर श्राद्ध से सन्तुष्ट होते हैं तो धन विद्या स्वर्ग, मोक्ष पुत्र, वा राज्य और सब कुछ सुख देते हैं।

पंडितजी—महाराज यदि इस कथाको सत्य माना जाय तो प्रथम यह कठिन मालूम होता है कि वह सातों ऋषिके बेटे और गर्ग ऋषिके शिष्य हों जिनको कभी भी किसी जीवकी हिंसाका काम नहीं पड़ा इनके पिता और गुरु दोनों महात्मा थे फिर इन सातों से [गाय] हिंसाका होना आश्चर्यजनक है, हां भूखे थे शायद ऐसा होगया हो परन्तु इस पर छोटेने कहा कि श्राद्धके नामसे मारिये पाप न होगा फिर उन सबने सम्मति दे दी और श्राद्ध किया जिसके फलसे उन सब को जातिस्मरण बना रहा और वह कालान्तर में तर गये क्यों कि श्रीमान् सनातनधर्मियोंकी सम्मतिसे जब पितर बड़े २ कार्य्योंको मृतकश्राद्ध करने से देते हैं तो क्या उनको यह भी खबर नहीं कि यह गाय भूखके कारण मारा चाहते थे पाप न लगने के कारण श्राद्ध करने के बहाने से मार श्राद्ध किया कहिये श्रीमान् बिना मानसीसंकल्प होने पर भी पितरोंने उनको श्राद्धका फल दे ही दिया क्या यह आश्चर्य्य नहीं है।

पुनः यह अभक्ष्य भोजन था फिर पितरों ने उसको क्यों स्वीकार किया क्या पितर भी ऐसी हिंसा को स्वीकार करते हैं?

मांस से श्राद्ध की आज्ञा और पितरों की तृप्ति ।

मत्स्य अ० १७ में लिखा है कि मत्स्य मांस से दो, हरिण के मांस से तीन, मेंढे के मांस से चार, पक्षियों के मांस से पांच बकरे के मांस से छः बिन्दुओं वाले हरिण के मांस से सात, एण संज्ञक मृग के मांस से आठ, सूकर और भैंसे के मांस से दस, खरगोश और कछुए के मांस से ११ रौरव नाम की हिरन के मांस से १५ महीने तक, मेढा और सिंह के मांस से १२ वर्ष तक तथा काल शाक जीव और गैंडे के मांस से अनन्त वर्षों तक पितर लोग तृप्त रहते हैं ॥

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेनतु ।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्चवै ॥ २१ ॥
षण्मासञ्छागमांसेन तृप्यन्तु पितरस्तथा ।
सप्त पार्षत मांसेन तथाष्टावेणजेनतु ॥ २२ ॥
दशमांसास्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ।
शशकूर्मजमांसेन मासानेकादशैवतु ॥ २३ ॥
रौरवेणच तृप्यन्ति मांसानि पञ्चदशैवतु ।
व्याघ्र्यासिंहस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ।
कालशाकेन चानन्ता खड्गमांसेनचैवहि ॥ २५ ॥

इसी भांति अन्य पुराणों में भी मांस खाने की आज्ञाएं पाई जाती हैं कहिये वेद की वह आज्ञा कि " अहिंसा परमो धर्मः " कहां रही । सच तो यह है कि स्वार्थी पुरुष अपने स्वार्थसिद्धि के सन्मुख किसी दोष को नहीं देखता इसी प्रकार श्राद्ध सिद्धि को समझिये परन्तु इस पर भी श्राद्ध की सिद्धिनहीं होती क्योंकि पौराणिकों का यह खयाल है कि हमारा किया श्राद्धादि जन्मान्तर में हमारे पितरों को पहुंचता है यह भी पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ७७ के लेख से मिथ्या प्रतीत होता है । अब मैं श्रीमान् को इसकी पुष्टि में और एक कथा सुनाता हूं । यह कथा भविष्योत्तरपुराणान्तर्गत ऋषिपञ्चमी व्रतोद्यापन

विधि में आई है। जो मुरादाबादीय पं० ज्वालाप्रसाद (महर्षिकुमार) भट्टाचार्य्य के हिन्दी अनुवाद सहित बम्बई गणपति कृष्णा जी के प्रेस में छपी है। हम मूल और उसी का हिन्दी अनुवाद नीचे लिखते हैं।

अत्रार्थे यत्पुरावृत्तं प्रवक्ष्यामि कथानकम्। पुरा कृत-
युगे राजा विदर्भायां बभूवह ॥ १६ ॥ श्येनजिन्नाम
राजर्षिश्चातुवर्ण्यानुपालकः। तस्य देशेऽवसाद्विप्रो वेदवेदा-
ङ्ग पारगः ॥ १७ ॥ सुमित्रो नाम राजेन्द्र ? सर्वभूत
हिते रतः। कृषिवृत्त्या सदायुक्तः कुटुम्बपरिपालकः ॥१८॥
तस्य भार्या सुसाध्वी च पतिशुश्रूषणेरता। जयश्रीर्नाम
विख्याता बहुभृत्यसुहृज्जना ॥ १९ ॥ आतिचिन्तान्विता
साच प्रावृट्काले सुमध्यमा। क्षेत्रादिषु रतः साध्वी व्या-
कुली कृत मानसा ॥ २० ॥ एकदा सात्मनः प्राप्तमृतुकालं
व्यलोकयत्। रजस्वलापि सा राजन्! गृहकर्म चकारह
॥ २१ ॥ भाण्डादीन्यस्पृशद्राजन्नृतौ प्राप्तेऽपि भामिनी।
कालेन बहुधा साध्वी पञ्चत्वमगमत्तदा ॥ २२ ॥ तस्या भ-
र्त्तापि विप्रोऽसौ कालधर्म मुपेयिवान्। एवं तौ दम्पती
राजन्! स्वकर्म वशगौ तदा ॥ २३ ॥ भार्या तस्य जय-
श्रीः सा ऋतुसंपर्क दोषतः। शुनायोनि मनुप्राप्ता सुमि-
त्रोऽपि नरेश्वर! ॥ २४ ॥ तस्याः सम्पर्क दोषेण वलीवर्दो
वभूवह। एवं तौ दम्पती राजन्! स्वकर्म वशगौ तदा २५
ऋतु सम्पर्क दोषेण तिर्यग्योनिमुपागतौ। स्वधर्म्माचरणा-
ज्ज्ञाता वुभौ जातिस्मरौ तथा ॥ २६ ॥ सुमित्रस्यच पुत्रो-
ऽभूद् गुरुशुश्रूषणे रतः ॥ २७ ॥ सुमतिर्नाम धर्मज्ञो देवता-
तिथि पूजकः। अथ क्षयाहे संप्राप्ते पितुस्तुमुमतिस्तदा२८

भार्यां चन्द्रवती प्राह सुमतिः श्रद्धयान्वितः । अद्य सांवत्सरदिनं पितुर्मे चारुहासिनि ! ॥२९॥ भोजनीया द्विजाभीरु पाकसिद्धिर्विधीयताम् ॥ ३० ॥ मुक्तं पायसभाण्डेव सर्पेण गरलं ततः । दृष्ट्वा ब्रह्मवद्भीता शुनी भाण्डानि साऽस्पृशत् ॥ ३१ ॥ द्विजभार्याच तां दृष्ट्वा उल्मुकेन जघानह । भाण्डादीनि च प्रक्षाल्य त्यक्त्वा पाकं सुमध्यमा ॥३२॥ पुनः पाकं च कृत्वातु श्राद्धं कृत्वा विधानतः । ततो भुक्तेषु विप्रेषु नोच्छिष्टं च ददौ वहिः ॥ ३३ ॥ भूमौ क्षिप्तं तयाशुन्या उपवासस्तदाऽभवत् । ततो रात्र्यां प्रवृत्तायां सा शुनी क्षुधिता भृशम् ॥ ३४ ॥ बलीवर्दमुपागत्य भर्त्तारमिदमब्रवीत् । बुभुक्षिताद्य हे भर्त्तर्नदत्तं भोजनादिकम् ॥ ३५ ॥ ग्रासादिकं च न प्राप्तं क्षुधा मां वाधते भृशम् । अन्यस्मिन्दिवसे पुत्रो ममलेह्यं ददात्यसौ ॥ ३६ ॥ अद्य मह्यं किमप्येष उच्छिष्टमपि नो ददौ । पायसान्ने पपाताद्य गरलं सर्प सम्भवम् ३७ मया विचिन्त्य मनसा मरिष्यन्ति द्विजोत्तमाः । संस्पृष्टं पायसं गत्वा बध्वाहं ताडिताभृशम् ॥ ३८ ॥ दुखितं तेन मे गात्रं कटिर्भग्नाकरोमि किम् । ततः प्राह स चानड्वान् भद्रे ते पापसंग्रहात् ॥ ३९ ॥ किं करोमि ह्यशक्तोऽहं भारवाहत्वमागतः । अद्याहमात्मनः क्षेत्रे वाहितः सकलं दिनम् ।४०। मार्गितश्चात्माजेनाहं मुखं बद्ध्वा बुभुक्षितः । वृथा श्राद्धं कृतं तेन जाताद्य मम कष्टता ॥ ४१ ॥ कृष्णउवाच—तयोः संवदतोरेवं मातापित्रोश्च भारत ! । श्रुत्वा पुत्रस्तथा वाक्यं

यदुक्तं च तदोभयोः ॥ ४२ ॥ पितरौ तौ विदित्वातु दत्तवान् सुमतिस्तदा । तस्यां रजन्यां तत्कालं ददौ तस्यैच भोजनम् ४३

भाषार्थ—इसी बीचमें जो प्राचीन कथाका वृत्तान्त है सो मैं कहता हूं, पहिले सत्ययुग में विदर्भनगरी में चारों वर्णों को पालने वाले राजाओं में ऋषिके समान एक राजा श्येनजित् हुवे थे, उनके देश में अङ्गों सहित वेदों के अन्तका जानने वाला ॥ १६ ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण प्राणियों के हितका करने वाला, खेतीके कर्मसे कुटुम्ब का पालन करने वाला एक सुमित्र नामक ब्राह्मण रहता था ॥ १८ ॥ बड़ी पतिव्रता, पतिकी सेवामें तत्पर अनेक भृत्य (नौकर) और कुटुम्बियों से युक्त जयश्री नाम वाली उस ब्राह्मणकी एक स्त्री थी ॥ १९ ॥ एक समय वर्षाकाल में अत्यन्त चिन्ता से युक्त सुन्दर कमर वाली खेतके काम में लगी हुई उस पतिव्रता का चित्त अत्यन्त व्याकुल हुआ ॥ २० ॥ एक समय उस स्त्री ने अपने ऋतुकाल को आता देखा और हे राजन् ! वह रजस्वला होकर भी घरके काम को करती रही ॥२१॥ हे राजन् ! ऋतुकाल प्राप्त होने पर भी उसने भाण्डादिक सब छुवे और वह स्त्री थोड़े ही समयमें मृत्यु को प्राप्त हुई ॥ २२ ॥ और उसका पति भी समयानुसार मृत्युके वश हुआ । इस प्रकार वे दोनों स्त्री पुरुष अपने कर्मोंके वश हुये ॥ २३ ॥ उस को वह स्त्री जयश्री ऋतुकाल की सङ्गतिके दोषसे कुतिया की योनि को प्राप्त हुई । और हे राजन् ! वह सुमित्र ब्राह्मण भी ॥ २४ ॥ उस स्त्रीके संगके दोषसे उस समय बलीवर्द (बैल) हुआ । हे राजन् ! तब वे दोनों स्त्री पुरुष इस प्रकार अपने कर्मोंके वशीभूत हुवे ॥ २५ ॥ ऋतुकाल की संगतिके दोष से वे दोनों पशु योनिको प्राप्त होकर अपने धर्मके प्रताप से अपने पूर्वजन्म को याद करते हुये ॥ २६ ॥ हे राजन् ! उसी प्रकार अपने किये हुये पहिले पापको भी याद करते हुये पुत्रके ही घर उत्पन्न हुये । गुरुकी अत्यन्तशुश्रूषा करने वाला, धर्मका जानने वाला, देवता और अभ्यागतों की पूजा करने वाला सुमतिनाम सुमित्रका पुत्र था । फिर पिताके क्षयाहके प्राप्त होने पर उस समय वह सुमति ॥ २७॥ २८ ॥ श्रद्धा से युक्त होकर अपनी चन्द्रवती स्त्री से बोला कि हे मनोहर हास्य करने वाली आज मेरे पिताकी वर्षीका दिन है ॥ २९ ॥ हे अधिक भय करने वाली ! आज ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है,सो तू जाकर पाक (भोजन) तयार कर । अपने पति सुमतिकी आज्ञा से उस चन्द्रवती ने सब भोजन बनाये ॥३०॥ तद-नन्तरखीरके पात्रमें सर्पने विष छोड़ दिया,उसको देखकर ब्राह्मणों केमर जानेके भय से खीरके पात्र को उस कुतिया ने छू दिया ॥ ३१ ॥ उस पात्रको छूती हुई उस कुतिया को देखकर उस ब्राह्मण की चन्द्रवती स्त्रीने उसे जलती लकड़ी से मारा और उस सुन्दर कमर वाली चन्द्रवती ने भोजन को छोड़ सब बर्तनों

को धोकर ॥ ३२ ॥ फिर दूसरा पाक बनाकर बड़ी विधिसे श्राद्ध करके ब्राह्मणों के जीम जाने पर उसने ज़मीन में पड़ी हुई ब्राह्मणोंकी जूठन बाहर नहीं फेकी जिससे वह कुत्ती भूखी ही रही, फिर रात होने पर अत्यन्त क्षुधा (भूख) लगी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अपने पति (बैल) के पास आकर यह बोली कि हे नाथ ! आज मैं बहुत भूखी हूं। किसी ने मुझे भोजनादि कुछ भी नहीं दिया ॥ ३५ ॥ आज तो एक ग्रास तक भी मैंने नहीं पाया, इस कारण भूख मुझे अधिक बाधती है। अन्य दिन तो यह हमारा पुत्र मुझे भोजन देता था ॥ ३६ ॥ आज तो इसने मुझे ज़रा झूठन तक भी नहीं दी। आज खीरमें सर्पका विष गिर गया था ॥ ३७ ॥ सो यह बड़े २ श्रेष्ठ ब्राह्मण मर जायगे। ऐसा मैंने विचार कर खीरको छू दिया, इस कारण बहू ने मुझे बहुत मारा ॥ ३८ ॥ उस मारने से मेरा शरीर बहुत दुःखित हुआ और मेरी कमर भी टूट गई, अब मैं क्या करूं ? यह सुनकर वह बलीवर्द बोला कि सुभगे ! तेरे पापके संग्रह से ॥ ३९ ॥ मैं भी अशक्त हूं सो क्या करूं? बोझे के उठाने को प्राप्त हूं। आजके दिन मैं अपने पुत्रके खेतमें सारा दिन चलाया गया ॥४०॥ और इस मेरे पुत्रने भूखको प्राप्त हुए मेरे मुखको बांधकर, मुझे बहुत मारा, इसने यह आज श्राद्ध वृथा ही किया, क्योंकि मुझे तो आज बड़ा कष्ट हुआ ॥ ४१ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्णजी बोले– हे युधिष्ठिर ! उन दोनों माता पिता के इस प्रकार कथन करते समय जो कुछ उन दोनों ने कहा जिसको उनके पुत्र सुमतिने सुनकर अपने माता और पिता जान कर उस रात्रिमें उसी समय उस अपनी माताको भोजन दिया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अब कहिये पुराणकी पुष्टि पुराण ही रद्द कर रहे हैं अब मैं इससे आगे आपको यह कथा श्रवण कराता हूं कि–गयाश्राद्ध से प्रेतभाव नहीं छूटता। देखिये पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १९६ में लिखा है कि–तुङ्गभद्रा नाम नदीके तट पर वर्णं आचारसेयुक्त धनधान्य संयुक्त कोहल नाम ग्राममें आत्मदेव एक श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदविद्या की विधिमें निपुण रहता था। उसकी-स्त्री धुंधुली नाम थी। जिसको पुत्र न होनेका बड़ा शोक रहा करता था। इसी दुःखमें घरसे निकल बाहर को चल दिया। मार्गमें एक तालाब से जल पी एक वृक्षकी छाया में बैठ गया वहां थोड़ी देरके पीछे एक सन्यासी जी भी आये। जो बड़े शान्त चित्त थे। उनको बिठाकर उनसे प्रश्नोत्तर करने लगा थोड़ी देर पीछे संन्यासी जीने कहा कि आत्मदेव तुमको क्या क्लेश है। उसने कहा कि विना पुत्रके मैं महादुखी हो रहा हूं-यह सुन संन्यासी जी को बड़ी दया आई फिर योगी महाराज ने आत्मदेवके माथे की अक्षरमाला को देखकर कहा कि तुम्हारे सात जन्म तक पुत्रकी प्राप्ति नहीं है, तुम आग्रह न करो कर्मकी गति बड़ी बलवान् है इसलिये ज्ञानको प्राप्त होकर सुखी रहो तब आत्मदेवने सिद्धजी से

कहा कि ज्ञानसे हमारे क्या होगा किसी प्रकार पुत्र दीजिये वरन् मैं आपके आगे प्राणोंको छोड़दूंगा तब योगीजीने कहा इस प्रकार के पुत्रसे तुमको सुख न होगा इतना कह एक फल देकर कहा कि इसको अपनी स्त्रीको देना। तुम्हारे अवश्यमेव पुत्र होगा आत्मदेव वहां से घर आये और सब वृतांत स्त्रीसे कह कर वह फल भी उसको दे दिया। उसने अपनी सखीको बुला सब वृतान्त कह कर कहा कि यदि मैंने इसको खाया तो मेरे गर्भ रह जावेगा। उसको मैं कैसे सह सकूंगी जो गर्भ तिरछा होगया तो मेरे प्राण निकल जायगें पुत्र उत्पन्न होने पर बड़े दुःख होते हैं इसलिये मैं नहीं खाऊंगी। तब सखीने भी कहा कि ऐसा ही करो जब पतिने पूछा तो कह दिया कि खालिया। इस बीच में उसकी बहिन अपनी इच्छा से उसके घर आई उससे सब अपना वृत्तान्त कह कर कहा कि मुझको बड़ी चिन्ता होरही है क्या करूं तब बहिनने कहा कि मेरे गर्भ है उत्पन्न होने पर मैं तुमको देदूंगी, तुम तब तक गर्भवती के समान छिप कर घरमें रहो और परीक्षाके लिये यह फल गौको दीजिये यह कह वह अपने घरको गई धुंधुलीने ऐसाही किया जैसा उसकी बहिनने कहा था काल पाकर धुंधुली की बहिन के पुत्र उत्पन्न हुआ। जो वह धुंधुलीको चुपके से दे गई तब धुंधुलीने पतिसे कहा कि सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न होगया यह सुन वह बड़े प्रसन्न हुए। और ब्राह्मणोंको दान दिया और जातकर्म किया। घरमें गीत होने लगे। तब धुंधुलीने पतिसे कहा कि हमारे स्तनोंमें दूध नहीं है। इसलिये मेरी बहिनको बुला लीजिये जिसके एक महीना हुआ कि पुत्र होकर मर गया है। उसने ऐसाही किया और उसने उसका नाम धुंधुकारी रक्खा वह नित्य पुष्ट होने लगा।

त्रिमासे निर्गतेचाथ सा धेनुः सुषुवेर्भकम् ॥१६६॥

तीन महीने के पीछे गौके बालक उत्पन्न हुआ जो सब अंगोंसे सुन्दर दिव्य निर्मल दीप्तिमान था, बालकको देख आत्मदेवने आप ही उसके संस्कार किये बहुधा मनुष्य उसके देखनेको आये, गौके समान कान होनेके कारण गौकर्ण नाम पड़ा. दोनों जब जवान हुए तो गौकर्ण तो पण्डित और ज्ञानी हुए और धुंधकारी महादुष्ट जो खेलते हुए बालकों को कुएं में डाल दिया करता था, जिसने वेश्याप्रसंग से पिताके सब द्रव्यका नाश कर दिया तब पिताने कहा कि इससे तो बिना पुत्रके मैं अच्छा था योगीके वचन सत्य हुए अब मैं कहां जाऊं क्या आगमें या कुएं में गिर कर प्राण देदूं इतने में गौकर्ण आये और उसने उनको उपदेश दिया कि कौन पुत्र है, उससे कुछ नहीं तुम वन में जाकर आनन्द करो।

पिता पुत्रके उत्तम वचनों को सुन वनमें जा आनन्द करने लगे इधर धुंधकारीने माताले कहा कि द्रव्य बतलाओ नहीं तो मैं तुझको मार डालूंगा

वह दुखी हो कुएं में गिर कर मर गई. जिसको निकाल गौकर्णने उसकी जाति के ब्राह्मणों को बुला कर श्राद्धकर्म कराया, और धुंधकारी वेश्याके साथ आनन्द करने लगा फिर उस वेश्याने आभूषणऔर वस्त्रोंकी इच्छा प्रकट कर कहा कि आप हमको दीजिये वरन् अन्य पुरुषके पास चली जाऊंगी वह रात्रिको चोरी कर लाया और उसको दिया फिर तो वेश्या अमूल्यभूषण वस्त्र देखकर विचार करने लगी कि यह चोरी करके लाता है किसी दिन राजासे मारा जायगा इस लिये हमको इसको मार द्रव्य लेकर पृथक् हो जाना चाहिये, यह सोच उसका गला फांस कर मारा जब वह इस प्रकार न मरा तो जलते हुए अंगार उसके मुख पर रख दिये वह मर गया और महाप्रेत हुआ इधर गौकर्ण उसको मरा जान तीर्थयात्राको गया और गयामें उसका श्राद्ध कर घरको आगया, एक दिन गौकर्ण अपने मकानमें सो रहा था उस समयधुंधकारीने अपना भयंकर रूप धारण कर उसको दिखलाया, गौकर्ण के पूछने पर उसने अपना पिछला सब वृत्तान्त कहा कि मैं धुंधकारी नामक तुम्हारा भाई हूं, अपने कर्मदोषसे प्रेत हुआ हूं, माताको बहुत दुःख दिया, वह कुए में गिरकर मर गई, फिर धनकेलालच से मुझको फांसीदेकर मारा, और मुंह पर अंगारे रखकर जला दिया, इससे मैं प्रेतभाव कोप्राप्त हुआ, अब आप मुझ को प्रेतभाव से छुडाइये यह सुन गौकर्ण ने दुःखी होकर धुंधकारी से कहा कि मैंने तुमको मनुष्यों के मुखसे मृतक हुआ सुनकर गयाजी में पिंड दिया था, तुम प्रेत कैसे हो गये, गयाजी में पिंडदेने से दुर्गतिवान को भी शुभगति निस्संदेह प्राप्त होती है, तुम कैसे स्वर्ग को नहीं गये भाई गोकर्ण महात्मा के वचन सुन. अध्याय १६७॥

तुभ्यं दत्तोमया पिंडो गयायां त्वामहं मृतम् ।४७॥
श्रुत्वा लोक मुखाद्भ्रातस्त्वं कथं प्रेततांगतः ॥
गया पिंड प्रदानेन दुर्गतोपि शुभांगतिम् ॥४८॥

दुःखितआत्मा धुंधकारी ने कहा कि सौ गयाके श्राद्ध से मेरी मुक्ति न होगी, हमारे उद्धारके लिये आपको दूसरा उपाय करना चाहिये जिसको गोकर्ण सुन विस्मय होकर बोला—

धुंधकारी दुःखितात्मा प्रोवाच पुरतः स्थितः ।
गया श्राद्ध शतेनापि न मे मुक्तिर्भविष्यति ॥५०॥
उपायोऽन्यश्चिन्तनीयो ममोद्धाराय वैत्वया ।
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ॥५१॥

आखों से मुक्ति नहीं है तो तुम्हारी असाध्य गति है, हे प्रेत इस समय तुम निर्भय होकर अपने स्थानको जाओ, यह सुन धुंधकारी अपने स्थान को गया, फिर गोकर्ण ने जान बिरादरी कुल बान्धवों धर्मशास्त्र के जानने वाले ब्राह्मणों से रात्रिका सब वृत्तान्त कहा परन्तु किसी ने उसका उपाय न बताया तब सब ब्राह्मणों ने सूर्य्यनारायणकी स्तुतिकी उस समय सूर्य्यजीने कहा कि धुंधकारीके महापापकी शान्तिके लिये गोकर्णको श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुनाना चाहिये वह उसको उद्धार करेगा।

श्रीभागवत सप्ताहस्तस्योद्धर्त्ता भष्यिति ॥७२॥

यह सुन सब ब्राह्मणोंने प्रसन्न हो गोकर्णसे सब वृत्तान्त कहा तब तुंगभद्रा नदीके किनारे पर ब्राह्मणोंका समाज में सब कौतुक देखने के लिये नगरकी प्रजा आई, तत्त्वअर्थके जानने वाले श्रेष्ठ वक्ता गोकर्णजीने सावधान होकर आसन पर बैठ ॥७६॥

गोकर्णो ज्ञाततत्त्वार्थो वक्ताध्यासनमास्थितः ॥७६॥

नारायण आदिक देवों को नमस्कार कर सप्ताह का आरम्भ कर बोलेकि श्रीहरिजीके वचनरूप शास्त्रचरणकमलसे उत्पन्न तीर्थ ॥७७॥

नारायणादिकान्नत्वा सप्ताहं समवर्त्तयन् ।
श्रीहरेस्तु वचः शास्त्रं तीर्थं पादाब्ज संभवम् ॥७७॥

जो सत्य है, तो धुंधकारी गति को प्राप्त हो जावे, इसी प्रकार मनसे श्रीमद्भागवत नाम का संकल्प कर ॥७८॥

यदि सत्यं तदाप्नोतु धुंधुली तनयोगतिम् ।
इति संकल्प्य मनसा श्रीमद्भागवताभिधम् ॥७८॥

"जन्माद्यस्ययतः" यहां से लेकर "धीमहि" के अन्त तक अर्थात् पहिला श्लोक पूरा पढ़ चुके हैं, तिसी समय धुंधकारी प्रेत आकर इधर उधर जगह बैठने को ढूंढ़ कर—

तत्र प्रेतः समागत्य स्थानं पश्यन्नितस्ततः ॥७६॥

सात गांठ से युक्त बांस में पवन को रूप धारण कर प्रवेश कर गया और श्रेष्ठ वैष्णव ब्राह्मणोंके सुनते हुए प्रतिदिन उसी बांसको गांठके छिद्रमें

स्थित होकर सुनने लगा, जब पहिले दिन कथा समाप्त हुई, तब बांस की एक गांठ फट गई, यह अत्यन्त अद्भुत कौतुक हुआ दूसरे दिन दूसरीगांठ फटी इस प्रकार एक २ गांठ फटती रही सातवीं गांठके भिन्न होने पर धुंधकारी शीघ्र ही प्रेतभाव को छोड़कर सुन्दर रूप धारण कर तुलसीदल से सुशोभित हो पीताम्बर धारण कर मेघोंके समान भूषणोंसे युक्त हो प्रकाशित होगया सम्पूर्ण सरवहष्टि होकर गोकर्ण भाईको नमस्कार कर बोला हे भाई ! आपने दया कर प्रेतके कष्टसे हम को छुड़ा दिया। भागवत की वार्त्ता धन्य है ! वैसेही विष्णु लोककी गति देने वाला सप्ताह भी धन्य है। जिसके प्रभाव से प्रेतभावसे अत्यन्य व्याकुल मैं विमुक्त होगया।

त्वयाहं मोचितो बन्धो ! कृपया प्रेत कश्मलात् ।
धन्या भागवती वार्त्ता प्रेतत्वोन्मूलिनी श्रुता ॥८५॥
सप्ताहोपि तथा धन्यो विष्णुलोक गतिप्रदः ।
यत्प्रभावाद्विमुक्तोहं प्रेतभावाद्भृशातुरः ॥८६॥
आर्द्रं शुष्कं लघुस्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् ।
पातकं भस्मसात्कुर्यात्सप्ताहोऽग्निरिवेन्धनम् ॥८७॥

नोट—अब आप यह बतलाइये कि गोकर्ण के गया श्राद्ध से धुन्धकारी का प्रेतत्व नहीं गया, फिर मुक्ति कैसी ? फिर अन्यों के आने का क्या प्रमाण, हां सूर्य्यनारायण की सम्मति से जब श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनाया तो उसका प्रेतत्व गया। अब बतलाइये दोनों में कौन ठीक है इसके उपरान्त यह भी विचार कीजिये कि जब व्यासजी ने १७ पुराणों के पश्चात् भागवत् को बनाया तो उससे पूर्व प्रेतों की मुक्ति किस प्रकार हुई ? श्रीमान् वास्तव में न गया में पिण्ड देने से प्रेतत्व छूटता है न सप्ताह सुनने से। यथार्थ में मनुष्य अपने२ कर्म्मों का फल पाता है न कि अन्य कर्म्मों का फल, जैसा कि मैं आपको पूर्व सुना चुका हूं। इस लिये आप स्वयं जान लीजिये कि मरों का गया आदि में श्राद्ध क्या लाभ देता है। सच तो यह है कि स्वार्थी पुरुषों की उस्तादी है अपने २ स्वार्थ की विचित्र कथायें लिखते रहे और अन्तमें वह सब ऋषि व्यास महाराज के सिर पर चपेट दीं। इस कथा में गौ के पेट से मनुष्य की उत्पत्ति लिखी है, वह भी एक फल के खाने से, उसपरभी आप विचार करें॥

देखिये महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ६१ में लिखाहै कि युधिष्ठिर महाराज पितामह से पूछते हैं कि किस काल में किस मुनिने श्राद्धको चलाया

केन संकल्पितं श्राद्धं कस्मिन्काले किमात्मकम् ।
भृग्वङ्गिरसके काले मुनिनाकतरेणवा ॥१॥

इसको सुन भीष्म जी ने कहा कि हे राजन् ! अत्रि के गोत्र में एक निमि नाम के ऋषि हुए उनका पुत्र श्रीमान् हुआ जो कुछ काल के पीछे मरगया जिसके विरह में वह रात दिन व्याकुल रहते थे जिससे उनकी बुद्धि विक्षिप्त होगई जिससे वह अपने पुत्र श्रीमान् के खान पान, बैठना, उठना, चलना फिरना आदि उसकी क्रियाओं का स्मरण करते रहते थे । एक अमावस्या को कुछ ब्राह्मणों को बुला दक्षिणाग्र कोणों पर बिठा स्वयं शुचि हो लवण वर्जित भोजन कराया और दक्षिणाग्र कोण पर श्रीमान् के नाम और गोत्र का उच्चारण कर कुछ पिण्ड अपने मृतक पुत्र के नाम पर रक्खे तो उनको बड़ा शोक हुआ ॥

तत्कृत्वा समुनिश्रेष्ठो धर्मशङ्करमात्मनः ।
पश्चातापेन महता तप्यमानोभ्यचिन्तयत् ॥१६॥

इससे प्रथम इस कर्म को किसी मुनि ने नहीं किया । हाय यह मैंने क्या अनुचित कर्म किया ऐसा न हो कि ब्राह्मण मुझको भस्म करदें ।

अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् ।
कथं नु शापेन न मां दहयुर्ब्राह्मणा इति ॥१७॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुये अपने कर्त्ता अत्रि का स्मरण किया वे आकर सब समझागये कि अब चिन्ता न करो ब्रह्मा ने इस कल्प को विचारा था अब तुमने उसका आरम्भ करदिया । भीष्म जी कहते हैं कि इसी निमि से यह श्राद्ध चला ।

निमेः संकल्पितस्तेयं पितृयज्ञस्तपोधन ! ॥२०॥

इसको विशेषता से जानने के लिये हम वाराहपुराण से निमि की कथा सुनाते हैं ॥

निमि और महात्मा नारद का सम्वाद ।

वाराहपुराण अध्याय १८१ में लिखा है कि मनु के वंश में आत्रेय नाम ब्राह्मण जिसका पुत्र निमि और उसका पुत्र श्रीमान् जो बड़ा तपस्वी था काल वश हो परलोक गमन करगया जिसके कारण महात्मा निमि रातदिन शोकातुर

रहने लगे कुछ दिन व्यतीत होने पर माघ मास की द्वादशी को महात्मा के मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि पुत्र का श्राद्ध करना चाहिये, यह विचार कर उसने बहुत प्रकार के मूल, फल, कन्द और मांसादि अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को इकट्ठा करके—

यानि तस्यैव भोज्यानि न मूलानि फलानिच ।
यानिकानिच भक्ष्याणि नवश्चरस सम्भवः ॥३१॥
आमन्त्र्य ब्राह्मणं पर्व शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥३२॥

वाराह संस्कृत १८७ अध्याय ॥

ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे पुत्र का स्मरण कर विधान और भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन करा दक्षिणा दे विसर्जन कर, दक्षिण दिशा में भूमि पर कुशों को बिछा उसके ऊपर नाम और गोत्र का उच्चारण कर पिण्ड दान किया फिर समाधि से परमात्मा का ध्यान कर बहुत रात्रि व्यतीत होने पर पुत्र शोक से व्याकुल होकर कहने लगा यह श्राद्ध आज तक किसी ने नहीं किया मैंने मोहवश यह काम किया जो पिण्डदान पुत्रके निमित्त दिया ।

अकृतं मुनिभिः सर्वं किं मया तदनुष्ठितम् ॥३१॥

यदि मेरा कृत्य मुनियों को विदित हो तो शाप देकर उसी क्षण भस्म करदें ।

कथं ते मुनयः शापात्प्रदहेयुर्नमामिति ॥४२॥

यदि इस कर्म को देवता, असुर, गन्धर्व, पिशाच, सूर्य्य और राक्षस जानलें तो हमको क्या कहें ?

सदेवासुर गन्धर्व पिशाचोरग राक्षसाः ।
किं वक्ष्यन्ति च मां सर्वे ये वैपितृपदे स्थितः ॥४२॥

हाय हमने बिना विचारे क्या किया । इस प्रकार रात्रि गई दिन आया फिर कहने लगा कि हाय लोक में निन्दा हुई और पुत्र का प्राण भी न मिला । हम बड़े मूर्ख हैं । हमारे पढ़ने, योग करने और ज्ञान को धिक्कार है इसभांति

अनेक प्रकार से रुदन कर रहे थे कि इतने में महात्मा नारद जी पधारे जिनको मुनि ने सत्कार कर बिठाया और निमि उनके सन्मुख खड़े हुए जिनको देख नारद मुनि ने कहा कि इस विषय में महात्मा जन कुछ विचार नहीं करते क्योंकि सबका जीवन आयु के अनुकूल होता है काल आनेपर कोई एक स्वांस भी नहीं ले सका। तब मुनि ने कहा कि मैंने स्नेह में फंसकर पुत्र के निमित्त सात ब्राह्मणों को भोजन कराया और दक्षिणा दे विसर्जन किया। भूमि में कुश रख दक्षिण मुख हो जल के साथ पिण्डदान दे नाम उच्चारण किया। हे महात्मन्! यह शोक मोह के वश होनेसे जो अयोग्यकर्म हुआ सो आप हमको नष्ट बुद्धि जानके क्षमा करें और ऐसा उपदेश करें जिस के करने से हमारा पाप दूर हो और यह कर्म जो हमने किया वह पहले महात्मा, ऋषि और मुनि किसी ने नहीं किया इस कारण मैं बारम्बार भयभीत होरहा हूं।

अनार्यं जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्ति करणं द्विज !।
नष्ट बुद्धिः स्मृतिः सत्वोह्यज्ञानेन विमोहितः ॥६४॥
न च श्रुतं मया पूर्वं न देवऋषिभिः कृतम्।
भयं तीव्रं प्रपश्यामि मुनिशापात्सुदारुणात् ॥६५॥

वाराह संस्कृत अ० १८७। ६५

कृपा करके हमारे भय को दूर कीजिये तब नारद जी ने कहा कि भय मत करो पितरों की शरण में प्राप्त हो जो आपने किया है उसमें किसी भांति का अधर्म्म नहीं है केवल धर्म ही है, इसको सुन निमि ने मन, वच, कर्म से प्रार्थना की कि पितरो मैं आपकी शरण हूं, इतना कहते ही निमि का पिता पितृलोक से आया और निमि को पुत्र शोक से दुःखी देख समझाने लगे कि तुमने पितृयज्ञका संकल्प किया है इस धर्म्म की ब्रह्मा जी ने पितरों के लिए स्वयं आज्ञा दी है इसलिये यह यज्ञ करना योग्य है।

पितृयज्ञेति निर्दिष्टो धर्मोऽयं ब्रह्मणास्वयम् ॥

इस पर नारद ने ब्रह्मा जी को प्रणाम कर पितृ यज्ञ का विधान सुनाया कि जसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और मरने पर धर्मराज की आज्ञा पालन करनी होती है। जन्म लेकर जितने जीव आते हैं उनमें किसीको अमरत्व (अर्थात् मृत्यु न हो) नहीं होता। इसलिये हे निमि ! जिसने

जन्म लिया है वह अवश्य मरेगा और मरा हुआ अवश्य जन्म लेगा इसलिये यह कर्म करना उचित है जिसके करने से मनुष्य के सब पापों का प्रायश्चित्त तथा मुक्ति प्राप्त हो। हे निमि विचार करो कि सात्विक, राजस और तामस इन तीन गुणों के अनुसार मनुष्य कर्म्म करते हैं और उसी भांति उनकी गति होती है। सात्विक कर्म करना कठिन है राजस और तामस कर्म्म करने से मनुष्य अल्पायु और अल्प बुद्धि होते हैं। सात्विक कर्म करने से प्राण त्यागने पर देवता, राजस से मनुष्य तथा तामस करने से राक्षस होता है। हे निमि! धर्म्मज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यादि कर्म को सात्विक कहते हैं। क्रूर, मिथ्यावादी और जीवहिंसक, लज्जाहीन और विवाद करनेवाला तामस कहाता है। जिस के करने से मनुष्य प्रेतयोनि में प्राप्त होता है। राजस गुण वे कहाते हैं कि जिनसे मनुष्यों में मान अश्रद्धा और नाना भांति के भोगों की इच्छा अपनी प्रशंसा और जिन्हों में यह धर्म है सो सात्विक गिने जाते हैं शान्ति, दान, ज्ञान श्रद्धा, तप ध्यान आदि करने से स्वर्ग व मोक्ष दोनों का अधिकारी होता है इसलिये निमि निज पुत्रके मरने का शोक न करो। शोक करने से बुद्धि, बल और देह इन तीनों की हानि होती है इन्हीं को हानि होने से लज्जा, धृति, धर्म कीर्त्ति, लक्ष्मी, नीति, स्मृति और विवेक यह सब नष्ट होजाते हैं। इस लिये हे निमि! इन बातों कोविचार कर आप शोक त्याग कीजिये।

लज्जा धृतिश्चधर्मश्च श्रीः कीर्त्तिश्चस्मृतिर्नयः।
त्यजन्ति सर्वं धर्मांश्च शोकेनोपहतं नरम्॥
एवं शोकं त्यजित्वातु निःशोको भव पुत्रक!॥८४॥

इसके पश्चात् फिर नारद जी ने मरण समय का कृत्य और श्राद्ध की सब क्रिया संक्षेप से निमि को सुनाई जिसको सुन निमि ने अपने को धन्य माना इस पर नारद जी ने कहा कि हे निमि! तुमने निज प्रेत पुत्र के निमित्त जो श्राद्ध किया है यह आजसे चारों वर्णों के सब मनुष्य करेंगे।

कर्त्तव्या एव संस्कारः प्रेतभाव विशोधनः।
नेमि प्रभृतिभिः शौचं चातुर्वर्ण्यस्य सर्वतः।
भविष्यति न सन्देहो दृष्टपूर्वं स्वयम्भुवाः॥७५॥
कृत्वातु धर्म संकल्पं प्रेतकार्य्यं विशेषतः।

न भेतव्यं त्वयापुत्र प्रेतकार्ये कृते सति ॥७६॥
तस्मात्प्रभृति लोकेषु पितृयज्ञो भविष्यति ।
एवं यास्यसिवत्सत्वं न शोकं कर्त्तुमर्हसि ॥

वाराहपुराण संस्कृत अ० १८८ श्लोक ७७ ॥

और तुमको इसके करने से अच्छा लोक प्राप्त होगा । तुम शिवलोक, विष्णुलोक, ब्रह्मलोक आदि लोकों में जहां इच्छा करोगे इस कर्म के प्रताप से वहां ही प्राप्त होगे ।

शिवलोकं ब्रह्मलोकं विष्णुलोकं न संशयः ॥

श्री पण्डितजी ! इस व्याख्यान में विचारना यह है कि निमि महात्मा स्वयं आप वर्णन करते हैं कि मैंने मोह से पुत्र के निमित्त पिण्डदान किया जिस पर भी पुत्र न मिला । हे नारद ! ऐसा काम प्रथम किसी ने नहीं किया यदि निमि और नारद के सम्वाद को सत्य मानाजावे तो यह भी सत्य मानना पड़ेगा कि निमि से प्रथम इस कार्य्य को किसी ने नहीं किया तो भला निमिके पुत्र से प्रथम जितने पुरुषों का मरण हुआ उनको,कौनसे कर्म्मों ने आनन्द दिया इस के उपरान्त जब नारद जी से मिलाप हुआ तो निमि ने अपनी भूल को फिर वर्णन किया तब नारदजी ने पितृयज्ञ का जहां विधान है सुनाया । वह कौन है जो जन्मता है, वह मरता है जो मरता है वह जन्मता है इसलिये मनुष्यों का ऐसे कर्म्म करने चाहियें जिससे मुक्ति हो और मुक्ति सात्विक अर्थात् ज्ञान, वैराग्य आदि के द्वारा प्राप्त होती है । इसलिये हे निमि, तुम मोह को त्यागकर कार्य्य करो क्योंकि मोह से धृति, धर्म्म, कीर्त्ति, स्मृति और विवेक जातारहता है । इसके उपरान्त यदि मृतकश्राद्ध से कुकर्म्मी जीव नरक से बच जाते हैं तो फिर पितृ श्राद्ध में नारद महाराज ने यह क्यों कहा कि सात्विक कर्म करने से मोक्ष होती है फिर भला जो मरता है वह जन्मता है और जहां जन्मता है वहां कर्म करता है तो फिर भला श्राद्ध करके किसको नरक से पार किया जाता है ।

भला पण्डित जी जब कर्म को प्रधान माना तो सम्पूर्ण आयु के अच्छे कर्म्मों का फल श्राद्ध न करने से कभी मिट सकता है । इसी भांति सारी आयु बुरे कर्म करनेवाले के पुत्रके श्राद्ध करने से पाप मिट सकते हैं ? कदापि नहीं ? यदि ऐसा होता तो फिर क्या ? नहीं नहीं प्रत्येक को अपने कर्म्मों के फलों को भोगना पड़ेगा ।

श्रीमान् ने शिवपुराण, वाराहपुराण, भविष्यपुराण से श्राद्ध के विषय को सुना इनसे भी अनोखा श्राद्ध जीवित मनुष्यों के हितार्थ सुनाता हूं अर्थात् जब कोई माता, पिता, भाई इत्यादि परदेश में हों या कारागार में हों तो वह अपने घर से उन मनुष्यों की तृप्ति अच्छे प्रकार से कर सकते हैं।

न जाने हमारे सनातनी भाइयों ने इसको क्यों भुला दिया। अतएव इसको सुन कर कार्य्य में लाना चाहिये। देखिये विष्णुपुराण चतुर्थ अंश अध्याय १३ में लिखा है—एक समय श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के एक सम्बन्धी का मणि चोरी होगई और वह मणि की चोरी श्रीकृष्ण महाराज को लगाई गई परन्तु यह मणि ऋक्षराज के बिलमें पहुंच गई थी क्योंकि चोर और ही था उससे सिंहको मिली और सिंहसे ऋक्षको मिली थी फिर कृष्ण महाराज ऋक्ष के साथ युद्ध करने को उसकी गुफामें घुस गये थे और अपने साथियोंको द्वार पर खड़ा कर गये।

गिरितटे च सकलमेव यदुसैन्यमवस्थाप्य।

सात आठ दिनके भीतर श्रीकृष्ण महाराज को लौट कर न आते देख साथियोंने जाना कि श्रीकृष्णजी को शत्रुने मारडाला अतएव वे सब द्वारिकापुरी को लौट आये और उनके भाइयों से सबहाल कहदियातब सब भाइयोंने उनकी श्राद्धादि क्रियाकी जिससे श्रीकृष्ण जी के प्राणों की रक्षा होती रही।

श्रद्धादत्तविशिष्टपात्रोपयुक्तान्नतोया।
दिनाकृष्णस्यबलप्राणपुष्टिरभूत् ॥ २७ ॥

अन्तको कुछ कालमें ऋक्षको जीत श्रीकृष्णजी मणि ले घर आये।

श्री पं०जी—महाराज अब आप भले प्रकार समझगये होंगे कि यहां जीवितावस्था में श्रीकृष्ण महाराजका श्राद्ध किया गया जिससे वह पुष्ट होते रहे।

पण्डितजी—ने कहा कि सेठजी अब इस विषय को समाप्त कीजिये बहुत होगया॥

सेठजी—श्रीमान् की जैसी आज्ञा मैं वैसा ही करूंगा परन्तु अब आप विचार तो कीजिये कि वेदोंमें तो मतकश्राद्ध का विधान है ही नहीं उन्हींके

अनुसार पुराण भी पुकार २ कर कह रहे हैं कि श्राद्ध करने से कुछ लाभ नहीं होता जैसा कि आपने पद्मपुराण अ० १८६ के इतिहास को श्रवण किया कि धुंधकारी की श्राद्ध ही नहीं किन्तु गया में पिण्डदान देने से भी मुक्ति नहीं हुई श्री पं० जी जब पुराण ही बतला रहे हैं कि निमिने श्राद्धको चलाया फिर किस प्रकार श्राद्धविधि वेदोक्त हो सकती है।

श्री पं० जी——सेठजी इतनी ही कथाओंसे मैंने भले प्रकार समझ लिया कि केवल स्वार्थियोंने अपना प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये इन कथाओंको गढ़ लिया और महर्षिके नामको बदनाम किया लालाजी वेद, बुद्धि और सृष्टि-क्रमके विपरीत बातों, गणेश महाराज की उत्पत्ति और मृतकश्राद्धकी कथाओंको सुन मेरी आत्मा तृप्त हो गई अब मैं इस समय पुराणलीला को नहीं सुनना चाहता हूं मैं जिन पुराणों पर बड़ा ही विश्वास करता था उनकी लीलाओंको सुन आज मेरी पुराणोंसे बहुत ही अश्रद्धा होगई सेठजी अब आप इतने विषय को भी मुद्रित करा दीजिये। देखें हमारे भाई इनका क्या उत्तर दें मैं तो आज से ही अपने यजमानों को समझा बुझा इन मिथ्यारीतियों को उनसे छुटा वेदोक्तविधिका पालन करना सिखाऊंगा। धन्य है स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज को कि जिन्होंने वेदोक्तमार्ग बतलाकर हमको श्रेष्ठ विप्र बनाया मैं तन मन से महात्माजीके चरणोंको सिर नवाता हूं तदनन्तर आपको आशीर्वाद देता हूं कि परमपिता परमेश्वर आपको सब प्रकारके आनन्द मंगल दे और अपने कटुवाक्योंके कहने की क्षमा मांगता हुआ आपकी सहनशीलता का धन्यवाद देता हूं परमात्मा आपको अधिक सहनशक्ति दे जिससे आप नाना प्रकार के कटुवाक्योंको सहन करते हुये देशका तन मन और धन से उपकार करें अन्य सज्जनों ने कहा कि सेठजी अब हम सब भी पुराणों की लीलाओंको सुन संतुष्ट हो गये अब आर बस करें पुनः—

अन्य महाशयों की ओरसे लाला शङ्करलालजीने खड़े होकर कहा कि मैं आज श्रीमान् पण्डितजीको तथा सेठजीको धन्यवाद देता हूं जिनकी परमकृपा से हम सबको पुराणों की अपूर्व और अद्भुत बातों के सुनने का अवसर मिला पुनः हम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और उनके गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी महाराज का कोटानुकोटि धन्यवाद देते हैं कि जिनकी कृपासे हमारे धर्मकी रक्षा हुई।

सेठजीने——कहा कि मैं प्रथम उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को कोटिशः धन्यवाद देता हूं कि जिनकी महतीकृपासे मेरी इच्छा पूर्ण हुई पुनः श्रीमान् पण्डित रामप्रसादजी और आप सज्जनोंको धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने अमू-

त्यसमय को प्रदान कर मेरी मनोकामना सिद्धकी आशा है कि श्रीमान् तथा आप सब निष्पक्ष होकर सत्य ग्रहण करेंगे।

इसके पश्चात् मैं न्यायकारी बृटिश गवर्नमेण्ट का धन्यवाद देता हूं कि जिसके श्रेष्ठशासन में प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों को प्रकट कर सकता है। हे ज .दीश्वर! हमारे ऊपर ऐसी न्यायशील गवर्नमेंट का शासन सदा रहे जिनके राज्यमें शेर और बकरी निर्भय होकर एक घाट पानी पीते हैं।

इसके पश्चात् महाशय छबीलालजी भजनोपदेशक ने श्री० पं० रवि-शङ्करजीशर्मा संरक्षक महाविद्यालय ज्वालापुर निर्मित भजन हारमोनियम पर गाया॥

टेक—मेरी यह अर्ज जगदीश्वर, दयाकर आप सुनलीजे।
हमारे जार्ज पञ्चम को, चिरआयुः हे प्रभो! दीजे॥
दयामय आप हैं स्वामिन्, अदल भी आपका कामिल।
हमारे राजराजेश्वर को, दोनों ही अदा कीजे॥ १॥
दया से दुःख को मेटें, अदल से सुख फैलावें।
तेरी भक्ती में चित लावें, यह शक्ति दान दे दीजे॥ २॥
करें सम प्यार पुत्रों पर, वह गोरा हो चाहे काला।
पिताके धर्म हैं जितने, वह सारे ही सिखा दीजे॥ ३॥
बताया राजका मारग, पिता तुमने जो वेदों में।
उसी मारगका अनुयायी, शहन्शाहको बना दीजे॥ ४॥
विनय अन्तिम ये शर्मा की, पिताजी आपसे हरदम।
हरिश्चन्द्र सा सत्यवादी, करण सा दानी कर दीजे॥ ५॥

जिसको सुन सब महाशयों ने करतलध्वनि से प्रसन्नता प्रकट कर श्री पञ्चमजार्ज महोदयको धन्यवाद दिया पुनः सेठजी ने निम्नलिखित मंत्र को पढ़ शान्ति की।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳪंशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वᳪं शान्ति शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि॥

श्री पण्डितजी——न चलने की तय्यारी की।

सेठजी——ने खड़े होकर हाथ जोड़ बड़ी नम्रता से श्रीमान् को नमस्ते व अन्य महाशयों को यथायोग्य कहा।

श्री पण्डितजी ने——प्रसन्नतापूर्वक आयुष्मान् कहा और चलदिये। अन्य सज्जनोंने यथायोग्य कहा सेठजी अपने कार्य्य में लगगये॥

इति विंशति परिच्छेदः।

समाप्तोयं पुराणतत्वप्रकाशस्यतृतीयोभागः।



* ओ३म् *

विज्ञापन ! विज्ञापन ! विज्ञापन !

कृपा कर एक वार इस विज्ञापन को पढ़ अपने पुत्र पुत्रियोंको पढ़ाकर इष्टमित्रोंको भी पाठ कराइये

गृहस्थाश्रम का दूसरा भाग

अर्थात्

पुत्री-उपदेश

मूल्य १)

गृहस्थाश्रम अर्थात् नारायणी शिक्षा के प्रथम भाग का आपने इतना मान किया है जिसका मुझको स्वप्न में भी ध्यान न था आपने उसकी **चौबीस हज़ार** कापियां हाथोंहाथ खरीदलीं जिससे **उत्साहित** होकर मैंने उसके **दूसरे भाग** को जिस परिश्रम और विचार तथा खोजसे लिखा है, उसका आनन्द मुझको जबही प्राप्त होगा जब आप स्वाध्याय कर अपने पुत्र पुत्रियों और स्त्रियों को पाठ करायेंगे इस पुस्तक के लिखने का मुख्य अभिप्राय यह है कि गृहस्थाश्रम किस प्रकार वास्तविक गृहस्थाश्रम बन सकता है आप इस पुस्तक को वेद, उपनिषदों स्मृतियों का सार, गीता, महाभारतादि का तत्व, प्राचीन और अर्वाचीन तत्ववेत्ताओं के मालूमात का

ख़ज़ाना समझिये, हक़ीकत में किताब क्या है मानो गृहस्थाश्रम को स्वर्गधाम बनाने की कल है, जीवन-सुधार की कुञ्जी है, आनन्द और प्रेम उत्पन्न करने का आला है। पूर्ण आरोग्यता, अपूर्व बल, उत्तम बुद्धि और सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करने के लिये आश्चर्यजनक सद् वैद्य। सर्वत्र मान प्रतिष्ठा करने का उस्ताद। अन्य देशों से भारत में धन खैंचलाने का एंजिन रूपी मित्र है। सन्तान सुधार और सुयोग्य बनाने का आचारी, मनुष्यजीवन के आला उद्देशों का बतानेवाला कर्मयोगी है जिसके बिना आप अपने देश, जाति और कुल का गौरव नहीं रख सकते मैं आपको इस पुस्तक की सूची कहांतक सुनाऊं सच मानिये किताब की उपयोगता विषयों की गम्भीरता, भाषा की लालित्यता हाथ में लेकर पढ़नेहीसे मालूम होगी, उस समय आप स्वयं इसकी प्रशंसा करने लगजायेंगे।

इसकी तारीफ़में अनेकान प्रशंसापत्र आचुके हैं जिनमेंसे हम आपको कुछ सुनाते हैं—

श्रीमान् बाबू गोपेश्वर जी उपमंत्री श्रीमती आर्य्यप्रांत निधि सभा संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध

महाशय चिम्मनलाल वैश्य रचित, पुत्री-उपदेश नाम पुस्तक वास्तव में कन्याओं तथा स्त्रियों के लिये अत्यन्त शिक्षा पूर्ण है स्त्रियों के लिये जितनी बातें आवश्यक तथा उपयुक्त हैं उन पर शास्त्रों तथा नीतिज्ञों के वचन लिखकर उनको भलीभांति समझाया है बहुतसी बातें जो बहुधा स्त्रियाँ जानती हैं परंतु उनके कारण तथा उपयोग से अनभिज्ञ हैं उनका साफ़ २ निर्णय इस पुस्तक का एक विशेष गुण है लेखक महाशय का उद्योग सराहनीय है यदि यह पुस्तक विवाह के उपहार में तथा कन्या पाठशालाओं में पारितोषिक के रूप में दी जावे तो इसका वास्तविक उपयोग हो। कागज छपाई आदि अच्छी केवल दोष इतना है कि किताब बहुत बड़ी है और कहीं २ भाषा कुछ क्लिष्ट है।

भारतवर्ष के प्रसिद्धउपदेशक श्रीमान् पण्डित हरिशङ्करमुरार व्यास ।

गृहस्थाश्रम के दूसरे भाग को मैंने आद्योपान्त पढ़ा चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा । सुन्दर लेख शक्ति, उच्चभाव, मनोहर वाक्य रचना बतला रही है, कि लेखक का जीवन पवित्र है । यदि प्रत्येक गृह में इस पुस्तक का नियमपूर्वक स्वाध्याय हो तो निःसदेह पुत्र पुत्रियों का जीवन आदर्श बन सकता है, इसलिये मैं ज़ोर के साथ प्रत्येक गृहस्थ से प्रार्थना करता हूं कि इस उपयोगी पुस्तक को मंगाकर अपने गृहों की शोभा को बढ़ावें और ग्रन्थकर्त्ता को धन्यवाद दें ॥

श्री पं० महेशीलाल जी डिप्टी इन्सपेक्टर

पुत्री उपदेश पुस्तक क्या है मानो फूलों का रस है या यों कहिये कि गड़ेहुए खज़ानों को आपने खोदकर निकाला है ॥

श्री ठा० गिरवरसिंह जी स० डि० इन्सपेक्टर

इसको पुत्री—उपदेश ही नहीं कहना चाहिये वरना मनुष्यमात्र के जीवन में पथप्रदर्शक और सुधारक समझना चाहिये क्योंकि इसके नवीन प्रशंसनीय विषयों से अनुभवि जीवन बनता है ।

बाबू रामनारायण जा भू० पू० मैनेजर कस्मन्डास्टेट वा प्रधान आर्य्यसमाज बाराबंकी

पुत्री—उपदेश योग्यता पूर्वक लिखी गई है विषय उपयोगी मनोरञ्जक और शिक्षापूर्ण है, स्त्रीशिक्षा के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है ।

चिम्मनलाल वैश्य तिलहर

उपन्यास स्वरूप में स्त्री-शिक्षा की अनूठी पुस्तक।

नारीभूषण अर्थात् प्रेमधारा

द्वितीय एडीशन मूल्य ||।)



प्रिय सज्जनो ! यह पुस्तक शिक्षा की कुञ्जी प्रेम की पुड़िया औ अपने ढंग की निराली एवं अद्भुत है इसकी भाषा सरल तथा रोचक है, सुन्दरता में मनको हरने वाली है। इस के पाठ एवं श्रवणमात्र से कुमति देवीका कूंच होजाता है। सासबहू वो देवरानी जिठानी और ननद भौजाईयों में प्रेम की धारा बहने लगती हैं गृह में शान्ति का राज्य स्थापित हो जाता है अधिक क्या कहें यदि आप अपनी-सन्तानों को धनवान बुद्धिमान्, धर्मात्मा, सुशील, सदाचारी, आदि उत्तम गुणों से विभूषित करना चाहते हो तो एकबार प्रेमधारा का अवश्य पाठ कराइये ॥

शिक्षादायक आदर्श जीवनचरित्र।

श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती, बड़ा टाइप, ३ चित्र, ८ पेजी रायल ४०० से अधिक पृष्ठ मूल्य केवल १=), महाराजा दशरथ -)||, आज्ञापालक श्रीराम =) भ्रातृस्नेही लक्ष्मण -), तपस्वी भरत -)||, धर्मराज युधिष्ठिर, =)|| वीरेश्वर अर्जुन =) माननीय द्रोणाचार्य =) नीतिज्ञ विदुर =) महाराजा दुर्योधन =)|| महात्मा पूर्ण -)|| महाराजा धृतराष्ट्र =) भरतोपदेश)||

स्त्रीशिक्षा की सर्वोपयोगी अद्वितीय पुस्तक।

नारायणी शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम।

यह वही पुस्तक है जिसकी प्रशंसा भारत एवं विदेशी जनोंने मुक्तकंठ से की हैं अपनी योग्यता के कारण यह बारहवीं बार छप चुकी है। गृहस्थ सम्बन्धी कोई ऐसा विषय नहीं जिसका इसमें आन्दोलन न किया गया हो १००० के लगभग विषयों से युक्त ८ पेजी ६०० पृष्ठ होने पर भी मूल्य केवल १||)

समस्त अठारह पुराणोंकी मीमांसा

पुराण–तत्व–प्रकाश तीन भागों में

पृष्ठ संख्या ५०० से अधिक, अठपेजी रायल साइज़, मूल्य प्रथमका १) द्वितीय का ॥) आने, तृतीय का ॥) इसकी प्रशंसा व्यर्थ है। पुस्तक हाथ में लेकर अठारह पुराणों के प्रत्येक विषय (मूर्त्तिपूजा, व्रत, तीर्थ, श्राद्ध, अवतार आदि) का खण्डन आप पुराणों से ही कर सकते हैं। पौराणिकों को एक बार पढ़ने एवं सुनने या शंका समाधान करने से ही वैदिकधर्म स्वीकार करना पड़ता है। इसके पाठ करने से विचित्र २ बातों का पता लगेगा। पढ़ते २ हंसते २ लोट पोट हो जावेंगे। अतः प्रत्येक गृहस्थी एवं प्रत्येक आर्यसमाज को एक पुस्तक अपने पास अवश्य रखनी चाहिये ताकि प्रतिपक्षियों से शास्त्रार्थ में कुछ अटक ही न रहे॥

हमारी पुस्तकों की प्रशंसा।

आ० प्रति० सभा, यू० पी० के माननीय बा० नन्दलाल जी, बी० एस-सी० एल एल बी० तथा अन्य आर्य विद्वानों सभ्य महिलाओं और भारत के प्रसिद्ध सम्पादक सरस्वती, आर्य मित्र, सद्धर्म–प्रचारक, वेदप्रकाश, भारत सुदशाप्रवर्त्तक, नवजीन, आनन्द, नागरी-प्रचारक आदि २ समाचार पत्रों ने मुक्तकंठ से की है इनके अतिरिक्त—

विदेशीजन।

श्री० एन० निरञ्जन स्वामी, फावफ़मेजर, बुशायर, श्री० पं० विदेशीलाल जी डर्बन नेटाल, अफ्रीका आदि के महानुभावों ने प्रशंसा-पत्र भेजे हैं।

और भी

भारत वकील, बैरिस्टर सबजज, मुन्सी, बाबू सेठ, साहूकारों के सहस्रशः प्रशंसा-पत्र उपस्थित हैं।

हमारी अन्य उपयोगी पुस्तकें।

गर्भाधानविधि ≈) वीर्यरक्षा≈) यथार्थशान्तिनिरूपण। शान्तिशतक≈) द्वैतप्रकाश≈) संसारफल≈) शिष्टाचार)॥ प्रेमपुष्पावली, (एकता पर सारगर्भित व्याख्यान २० बड़े पृष्ठ) मू०≈)॥ नीत्युक्तस्त्रीधर्म≈) स्मृत्युक्तस्त्रीधर्म≈)॥ चित्रशाला)॥ ईश्वरसिद्धिः)॥



भजनों की पुस्तकें।



भजनसारसंग्रह ≈)॥ स्त्रीज्ञानगजरा नं० १)॥ नं० २ ≈)॥ भजन पचासा एक आना।

☞ इसके अतिरिक्त संस्कारविधि, सत्यार्थप्रकाश, मनुस्मृति भास्करप्रकाश, संगीतरत्नप्रकाश १० भाग आदि आर्यसामाजिक पुस्तकें भी हमारे यहां मिलती हैं॥

नोट—नाम व पता बहुत साफ २ हिन्दी उर्दू वा अंग्रेज़ी में लिखना चाहिये।

देखने योग्य नवीन

महारानी मन्दालसा का

पूर्ण वृत्तान्त तथा पुत्रों को दिये हुए उपदेश सहित जीवन चरित्र ८० पृष्ठ की पुस्तक ≈ ।)॥

* ओ३म् *

पुत्री प्रियम्वदा देवी रचित

पुस्तकें ।

कलियुगीपरिवार का एक दृश्य ।।]

धमात्माचाची और अभागाभतीजा

मूल्य ।-)

आनन्दमयी रात्रि का स्वप्न =)

उपरोक्त पुस्तकों की अब बहुत थोड़ी कापियां शेष रहगई हैं लेने वाले सज्जन शीघ्रता करें ।

मिलने का पताः—

चिम्मनलाल वैश्य

तिलहर ज़ि० शाहजहांपुर ।